अक्टूबर, 2006, मूल्य : 10 रुपए

सोए हुए लोगों को जगाने के लिए

कलरव

ताकि बना रहे अहसास

आरक्षण : जरूरी या राजनीति की मजबूरी

माहेश्वर की दो कविताएं

वे

वे जब विकास की बात करते हैं
तबाही के दरवाजे पर
बजने लगती है शहनाई
वे कहते हैं-एकजुटता
और गांव के सीवान से
मुल्क की सरहदों तक
उग आते हैं कांटेदार बाड़े
वे छुपाने के उस्ताद हैं
मगर खोलने की बात करते हैं
वे मिटा देते हैं फर्क
गुमनाम हत्याओं और राजनीतिक
प्रक्रियाओं के बीच
उनके लिए धर्म एक धंधा है
और सहिष्णुता- हथकंडा
वे राशन-दुकान की लंबी लाइन में चिपके
आदमी के हाथ बेच देते हैं
आदमी के सबसे हसीन सपने
और कहते हैं कि
दुनिया बदल रही है धीरे-धीरे

वे बदलाव के गीत गाते हैं
और अच्छे भरे-पूरे दिन
रातों-रात बन जाते हैं
टूटी दीवारों पर फड़फड़ाते इश्तिहार
वे चाहें तो सूरज को पिघलाकर
बना दें-निरा पानी
वे चाहें तो चांद के धब्बे
हो जाएं-और गहरे
वे चाहें तो तारों को बना दें डालर
खरीद लें दुबारा
अपनी बेची हुई अस्मिता
अपनी चाहत में वे हैं-
सर्वशक्तिमान-मगर उनका जोर चलता है
कमजोरों पर-यानी, उन पर
जो ऐन वक्त पर
आदमी होने के बजाय
साबित होते हैं-भेड़िए के मुंह में मेमना।

औरत के बारे में एक कविता

वह आएगी-बांस के झुरमुटों
और फूलों की घाटी को
अपने लहूलुहान पैरों से
हमवार करती हुई
वह जले हुए जंगलों से
निचोड़ लाएगी हरीतिमा
और उससे खींच डालेगी
सेवा और प्यार के बीच एक लकीर-
जैसे पुराने किलों के चारों ओर
खोदी गई थीं खाइयां
जैसे आदमी की नसों को दुह कर
निकाली गई थीं नहरें
जिन्हें लील गया समय पर
पूरा का पूरा एक रेगिस्तान
तुम इसी रेगिस्तान में जलोगे
तुम्हारी आवाज में जो
पुरुष खनक थी
जो रुआब और रुतबा था
मालिकाना था
हुक्म और डपट थी
और थी
अपमान और यंत्रणा-
सबके सब गर्क हो जाएंगे
मृत्यु की प्रकाशहीन घाटी में-
उस बेहोशी की तरह
जो किसी भी क्षण
आत्महीन लोगों को
धर दबाती है
जैसे उचट जाती है
बिना सपनों की वीरान नींद
और जैसे उड़ जाती है भूगोल से
कोई भी बस्ती
सुंदरीकरण के प्रचंड पदाघात से
तब, जीवन के लहलहाने की बारी आएगी-
फूलने, फलने और पकने के दिन आएंगे
तब, वह आएगी-
एक विजेता की तरह
मेहंदी रची हथेलियों में बहार का संदेश
लिए
फूलों की घाटी में सूरज उगाती हुई।

अक्टूबर, 2006, वर्ष : 1, अंक : 2

इस अंक में पृष्ठ

• मुख्य लेख

कब तक चलेगा यह खेल..... 5
क्या कहना है मोइली समिति का..... 6
एक औ ओल्डमैन इन हरी 7
बस राह बनाना बाकी 8
तैयार है तीसरी सिफारिश भी 9
दशकों से पनप रहे आक्रोश का नतीजा है 10
पूरी तरह सचेत होकर आगे बढने की जरूरत 12
मंडल से अब तक आरक्षण का पुनरावलोकन 14
कुछ महत्वपूर्ण जानकारियां 17
कौन डरता है महिलाओं को आरक्षण देने से 18
इधर विधयक उधर विरोध 21
जिम्मेदारी नौजवानों को उठानी होगी 22
प्राथमिक स्कूलों के दो अनुभव 23
सबको मिले शिक्षा का बराबर अधिकार 24
अभी भी सहमा-सहमा सा है वातावरण 25
प्रतिभा का मिथक शास्त्र 27
वास्तविकता और मिथक 29
अभिजात व्यवस्था में आरक्षण 30
आक्षरण व दक्षिण भारत के राज्य 32
सितंबर माह की महत्वपूर्ण घटनाएं 35

संपादक : तड़ित कुमार

प्रबंध संपादक : उदय नारायण राय

उप संपादक : रुचिर कुमार, संध्या शुक्ला

संपादकीय सलाहकार मंडल

डा. दिनेश प्रसाद मिश्र *गिरिजा शुक्ला*
अनिल तिवारी *प्रीति उपाध्याय*
त्रिलोकी राय *अनुराधा गुप्ता*

कानूनी सलाहकार : इंदु प्रकाश सिंह, इलाहाबाद उच्च न्यायालय/त्रिपुरारी राय, अधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय (उपरोक्त सभी पद अवैतनिक है)

प्रसार व्यवस्थापक : शिवेंद्र/ओमप्रकाश

स्वामी, मुद्रक व प्रकाशक श्रीमती शोभा तिवारी द्वारा अक्षर भारत लिमिटेड सी-9, सेक्टर-3, नोएडा (उ.प्र.) में मुद्रित व प्रकाशित

कार्यालय : 93ए, अरावली अपार्टमेंट, सेक्टर-52, नोएडा, गौतमबुद्धनगर (उ.प्र.)

कारपोरेट कार्यालय : 902, नई दिल्ली हाऊस, बाराखंभा रोड, नई दिल्ली

फोन : 0120-2585565, 9810645159

सदस्यता शुल्क

एक प्रति	10.00 रु.
वार्षिक	100.00 रु.
पांच साल	500.00 रु.
आजीवन	5000.00 रु.

पत्रिका में प्रकाशित लेख से संपादक/कलरव की सहमति आवश्यक नहीं है।

पत्रिका में छपी सामग्री को लेकर किसी तरह के विवाद का निपटारा माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद में ही किया जा सकेगा।

जख्म अभी और गहरा होगा

जिस दिन भारत का संविधान लागू हुआ उसी दिन से देश में जातिगत आधार पर आरक्षण भी लागू हुआ। संविधान के प्रणेता ऐसा समझते थे कि अगर सदियों से शोषित, पीड़ित पिछड़ी जातियों के लोगों को आरक्षण मिलेगा तो इससे उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने में मदद मिलेगी। संविधान प्रणेता ऐसा समझते थे कि दस साल में ही यह काम हो जाएगा और इसके बाद उन्हें आरक्षण देने की जरूरत नहीं रह जाएगी। लेकिन आने वाले वर्षों में जो कुछ हुआ उसे हम सभी जानते हैं। साठ साल से आरक्षण लागू है और आज भी पिछड़ी जातियां राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल नहीं हो पाई हैं, बल्कि इसके विपरीत वे मुख्यधारा से और भी ज्यादा दूर हो गई हैं। सैकड़ों साल से जिन पर अमानवीय अत्याचार होता रहा, महज दस साल के आरक्षण से वह समाप्त हो जाएगा, ऐसा सोचना ही बहुत गलत था। लेकिन उन दिग्गज नेताओं की बुद्धि और समझदारी पर सवाल उठाने का अब कोई मतलब नहीं है। वे नेता नए भारत के निर्माता थे और उनके कला-कौशल से नए भारत का कैसा निर्माण हुआ यह हम सभी देख रहे हैं।

जातिगत आरक्षण ने अगड़ों और पिछड़ों के बीच एक मजबूत और पक्की दीवार खड़ी कर दी है, जिन्हें पास आना था, एकाकार होना था, वे एक दूसरे से कोसों दूर हो गए और यह दूरी बढ़ती ही जा रही है। क्या देश के नेताओं को यह बात समझ में नहीं आ रही है ? खूब समझ में आ रही है और इसीलिए वे जातिगत आरक्षण को बनाए रखना चाहते हैं और इसके किसी विकल्प की तलाश नहीं करना चाहते। हम जब दुश्मन से लड़ते हैं तो दुश्मन से कुछ सीखते भी हैं, कहते हैं कि राम ने भी रावण से बहुत कुछ सीखा था। अंग्रेजों से लड़ने वाले हमारे नेताओं ने अंग्रेजों से भी बहुत कुछ सीखा था। अंग्रेजों की नीति थी फूट डालो और राज करो। हमारे देशभक्त नेताओं ने इस को आत्मसात कर लिया। जातिगत आरक्षण फूट डालने की राजनीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कोई भी पार्टी जातिगत आरक्षण का विरोध नहीं करती, क्योंकि जातियों के बीच पड़ी इस फूट का चुनाव के समय सभी पार्टियां फायदा उठाती हैं, वामपंथी पार्टियां भी इससे अछूती नहीं हैं। चुनावबाज सभी राजनीतिक पार्टियां समाज में फूट डालने का काम कर रही हैं। सैकड़ों साल से शोषित और पीड़ित लोगों को आगे आने का अवसर मिलना चाहिए और सरकार को इसके लिए समुचित व्यवस्था करनी चाहिए इस बात से शायद ही कोई इनकार करेगा। लेकिन ऐसा करने के लिए पूरे समाज को जातियों में बांटने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि समाज में कौन पिछड़ा, शोषित और पीड़ित है यह कोई अंधा भी बता सकता है। ऐसा नहीं कि नेता लोग भी इस बात को नहीं समझते हैं , लेकिन जातिगत आरक्षण के अभाव में उनकी राजनीति भी खतरे में पड़ जायेगी । इससे भी एक बड़ा खतरा और है। अगर आर्थिक आधार पर आरक्षण दिया जाने लगेगा तो देश के गरीब और पीड़ित लोग एकजुट हो जाएंगे। गरीब चाहे ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, निम्न जातियों का हो या आदिवासी, उनकी पहचान गरीब के रूप में होगी और अगर ये गरीब एकजुट हो गए तो सरकार के लिए परेशानी पैदा होगी, क्योंकि इससे वर्ग संघर्ष को बल मिलेगा और जातियों के बीच फूट डालने का रास्ता बंद हो जाएगा। देश की कोई भी राजनीतिक पार्टी ऐसी स्थिति उत्पन्न होने देना नहीं चाहती, वामपंथी पार्टियां भी नहीं। अफसोस की बात यह है कि अगर वामपंथी पार्टियों ने राष्ट्रीय राजनीति में सही और सकारात्मक भूमिका निभाई होती तो आज आरक्षण को लेकर यह स्थिति ही पैदा नहीं होती। लेकिन वामपंथी पार्टियां कभी नेहरू, कभी इंदिरा गांधी, कभी वी.पी. सिंह तो कभी मुलायम सिंह का झोला ढोने में लगी रहीं और आज सोनिया-मनमोहन के माध्यम से अमेरिका और विश्व पूंजीवाद की दलाली कर रही हैं। ऐसे में जातिगत आरक्षण का जख्म तो अभी और गहरा होगा, और अधिक पीड़ादायक होगा।

पठनीय व संग्रहणीय अंक

लंबे समय से इस तरह की जरूरत महसूस की जा रही थी कि हिंदी में कोई ऐसी पत्रिका हो जो किसी खास विषय को केंद्रित कर बहुआयामी सामग्री उपलब्ध करा सके। हिंदी के पाठकों के लिए इसका सर्वथा अभाव दिखाई दे रहा था। कुछ प्रयास इस दिशा में पूर्व में किए अवश्य किए गए थे जिनका स्वागत भी किया गया था पर वे लंबे समय तक चल नहीं सके। उन्हें क्यों स्थगित कर देना पड़ा, यह अलग विश्लेषण का विषय है पर इतना तय है कि इस तरह की सामग्री की आवश्यकता अभी भी गंभीरता से महसूस की जा रही थी। फिलहाल जिस तरह की भागमभाग की जिंदगी है, लोगों के पास समय का अभाव है प्रतियोगिता काफी कठिन है, ऐसे में किसी को भी अगर एक जगह बहुत सी सामग्री एक साथ उपलब्ध हो जाए तो उसके लिए चीजों को व्यापकता में समझने में आसानी हो जाती है। अंग्रेजी में इस तरह के महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं जिनकी निरंतरता भी बनी हुई है और उन पत्रिकाओं ने अपना एक अच्छा खासा पाठक वर्ग भी तैयार किया है। लेकिन हिंदी में यह काम अभी भी बाकी था। इसके बावजूद किसी का ध्यान इस ओर नहीं जा रहा था कि बहुत बड़े हिंदी के पाठक वर्ग के लिए यह काम क्यों नहीं किया जा रहा है। जो लोग इस काम को आसानी से कर सकते थे शायद उन्हें यह लग रहा हो कि अंग्रेजी से ही सब का काम चल जाएगा। यह किसी भी तरह से उचित नहीं है। अगर सभी को एक साथ विकास के रास्ते पर ले जाना है तो हिंदी को अंग्रेजी के मुकाबले कहीं ज्यादा महत्व देना पड़ेगा तभी हिंदी समाज का भी अपेक्षित विकास संभव हो सकेगा अन्यथा दो तरह की दुनिया विकसित होती जाएगी और विषमता की खाई चौड़ी होती जाएगी। इसे पाटने के लिहाज से कलरव ने जो बीड़ा उठाया है उसे आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। अगर इसकी निरंतरता बनी रही तो कम समय में ही हिंदी पाठकों के पास ऐसा संग्रह हो जाएगा जिसके बूते बहुत कुछ किया जा सकेगा।

अंशुल चक्रवर्ती, हावड़ा, कलकत्ता

इस प्रयास को आगे बढ़ाते रहें

हिंदी में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में अभी तक ऐसी कोई गंभीर पत्रिका नहीं थी जो किसी एक विषय पर केंद्रित हो। पत्रिका के साथ जो ब्रोशर मिला है उससे यह पता चला कि कलरव का हर अंक किसी एक खास विषय पर केंद्रित होगा और कोशिश यह होगी कि उस विषय से संबंधित सभी आवश्यक सामग्री इसमें उपलब्ध करवाई जा सके। इस लिहाज से इसे समय की आवश्यकता के अनुरूप ही कहा जाएगा क्योंकि मीडिया लगातार विकसित होता जा रहा है और इसमें विभिन्न तरह के प्रयोग भी समय-समय पर किए जा रहे हैं। इसके बावजूद यह क्षेत्र अभी तक कम से कम हिंदी में अछूता ही रह गया था। इलेक्ट्रानिक मीडिया जरूर इस दिशा में काम करता दिखाई देता है पर वह संग्रहणीय नहीं हो सकता क्योंकि दृश्य माध्यम की अपनी सीमाएं होती हैं। उसे किसी एक समय देखा अवश्य जा सकता है पर हर किसी के लिए यह संभव नहीं हो सकता कि वह उसे संग्रहीत कर सके। अखबारों में भी इस तरह की कोशिशें की जा रही हैं लेकिन उन्हें भी काटकर, संभाल कर रख पाना किसी के लिए बहुत आसान काम नहीं होता। यह काम किसी पत्रिका के माध्यम से ही आसान हो सकता है। व्यावसायिक हिंदी पत्रिकाएं भी इस काम को कर सकती थीं लेकिन लगता है उन्हें इसकी जरूरत अभी समझ में नहीं आ रही है। यह भी एक तथ्य है कि जिस तरह बाजार उन पर हावी है उसके मद्देनजर उनके लिए यह काम आसान भी नहीं होगा क्योंकि इस तरह के काम के लिए कांटेन्ट का बहुत महत्व होता है। दिनमान भी व्यावसायिक पत्रिका थी पर उसका कांटेन्ट इतना मजबूत होता था कि वह संग्रहणीय पत्रिका हो गई थी। प्रतियोगी छात्रों के लिए तो यह बेहद जरूरी पत्रिका बन गई थी जिसके हर अंक का पाठकों को इंतजार रहता था और वे लंबे समय तक उसे अपने पास संभाल कर रखते थे। उसके बाद शायद ऐसी कोई पत्रिका हिंदी में नहीं उपलब्ध हो सकी। यह मानना बहुत जल्दबाजी होगी कि कलरव दिनमान जैसी पत्रिका बन सकेगी पर फिलहाल इतना अवश्य माना जा सकता है कि अगर यह प्रयास इसी गंभीरता से जारी रहा तो निश्चित रूप से हिंदी पाठकों में कलरव को विशिष्ट स्थान प्रदान करेगा।

अनिमेष अंकुर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

बेहतर बदलाव के लिए वैज्ञानिक सोच होनी चाहिए

कलरव का संपादकीय पढ़ा। अच्छा लगा। जिस तरह पूरा मीडिया बदल रहा है उसी तरह अखबारों और पत्रिकाओं का संपादकीय भी बदल रहा है। एक जमाना था जब संपादकीय पढ़े बिना पाठक को संतोष नहीं होता था। उससे देश और समाज के निर्माण के बारे में जो दिशा मिलती है वह बड़े काम की होती थी, किसी भी विषय को समझने में आसानी होती थी, उसके हर संबंधित पक्ष की जानकारी मिल पाती थी और बुराइयों पर करारा प्रहार किया जाता था। समय के साथ इसमें बदलाव होता गया और अब देखने में आ रहा है कि धीरे-धीरे संपादकीय मात्र परंपरा बन कर रह गया है और वह सिर्फ देखने की चीज रह गई है पढ़ने का बहुत कम लोगों का मन होता है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण यह समझ में आता है कि संपादकीय में पाठक की जो अपेक्षाएं होती हैं वह शायद उसे नहीं मिल पातीं। संभव है कि आज की जरूरतें ही ऐसी हों और उन्हीं के अनुरूप ऐसा किया जा रहा हो पर कलरव का संपादकीय पढ़ने के बाद ऐसा लगा कि नहीं, अभी भी गुंजाइश बाकी है और संपादकीय का महत्व कम नहीं हुआ है। इसे पढ़ने के बाद इस पत्रिका का महत्व भी आसानी से समझ में आ गया। बस देखने की बात यह होगी कि कलरव पत्रिका भी तो कहीं बाजार की चपेट में नहीं आ जाएगी क्योंकि बाजार का मायाजाल ऐसा है जिसकी चपेट में कोई भी आसानी से फंस सकता है। आशा की जा सकती है कि कलरव पत्रिका अपनी प्रतिबद्धताओं को भूलेगी नहीं और समाज निर्माण की अपनी जिम्मेदारी को बखूबी निभाती रहेगी।

नृपेन बरुआ, गौहाटी, असम

कब तक चलेगा यह खेल?

जिस वीरप्पा मोइली पर्यवेक्षण समिति के माध्यम से सरकार ने लगातार व्यापक होते जा रहे मेडिकल छात्रों के आंदोलन को शांत करने और उन्हें कुछ लालीपाप देने का बहाना बनाया था, उसका मसौदा अब तैयार हो चुका है और जैसी की आशंका थी, सरकार की ओर से पूर्व में घोषित नीतियों का अनुमोदन ही इसमें किया गया है। यानि शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की घोषित व्यवस्था में कोई खास बदलाव नहीं किए जाने की सिफारिश की गई है, यह अलग बात है कि इसका विरोध करने वाले छात्रों को चुप कराने के लिए सीटें बढ़ाने का प्रस्ताव अवश्य कर दिया गया है जिसे किसी भी तरह से विरोधी छात्रों के सवालों का उचित जवाब नहीं कहा जा सकता। लेकिन जिसके पास सत्ता है और जो किसी भी तरह से सत्ता में बने रहना अथवा उसे हथियाने की कोशिश में लगे रहते हैं, उनके लिए तो यह रास्ता मानो ब्रह्मास्त्र है और वे इसे किसी भी कीमत पर लागू करने में ही अपनी राजनीति की सफलता मानते हैं। लेकिन यह सवाल उनसे कौन पूछेगा कि आखिर बुनियादी सवालों के हल का उनकी राजनीति में क्या स्थान है? अगर उनमें वास्तव में लोगों के कल्याण और बराबरी की भावना है तो ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं बनाते और उसे लागू करते कि किसी के साथ अन्याय भी न हो और सब के साथ न्याय हो सके।

एक ऐसे समय में जब सब कुछ शांतिपूर्वक चल रहा था, ऐसे दावे किए जा रहे थे कि देश हर क्षेत्र में लगातार विकास कर रहा है, हमारे देश के मानव संसाधन विकास मंत्री को अचानक यह सूझ गया कि पिछड़ों को शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण दिया जाना चाहिए। यहां एक सवाल सबसे पहले उठ खड़ा होता है कि आखिर उन्हें यह क्यों नहीं सूझा कि हर बच्चे के लिए समुचित शिक्षा की गारंटी की जाए और हर पढ़े लिखे को ही नहीं, गैर पढ़े लिखे लोगों के लिए भी रोजगार की गारंटी की जाए। यह ऐसा सूत्र है जिसे अगर ईमानदारी से लागू कर दिया जाए तो किसी के लिए आरक्षण की जरूरत ही नहीं रह जाएगी, लेकिन इसमें न किसी सरकार की दिलचस्पी है और न ही किसी राजनीतिक पार्टी का ऐसा कोई उद्देश्य है। वे बातें चाहे जितनी न्याय और विकास की करें, व्यवहार में ऐसा नहीं कर सकती क्यों कि इससे उनका वोट बैंक गड़बड़ाएगा और सत्ता दूर होती जाएगी। जब यह सूत्र लागू हो जाएगा तो चुनाव के मुद्दे बदल जाएंगे और सिंहासन डोलता नजर आएगा। इसलिए कोई नहीं चाहता कि सब को सुअवसर मिले क्योंकि इससे उनका अवसर खतरे में पड़ जाएगा।

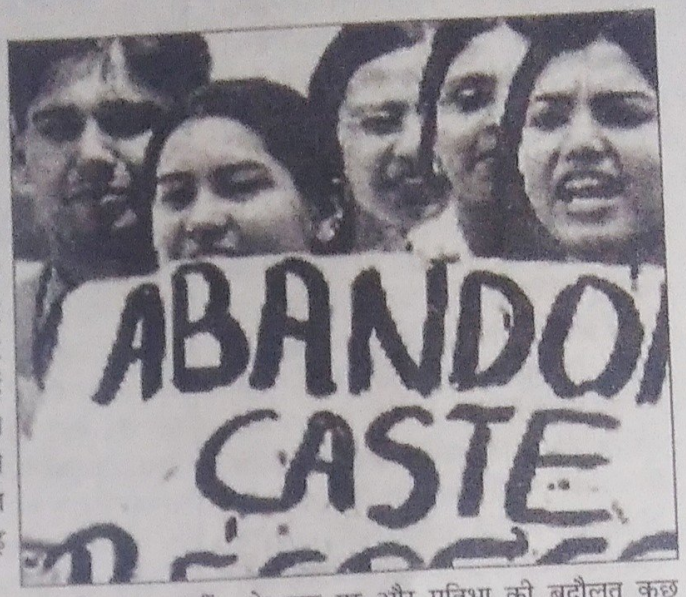

यहां इस पचड़े में पड़ने की जरूरत नहीं है कि माननीय अर्जुन सिंह अपने राजनीतिक जीवन के आखिरी समय में पिछड़ों का नायक बनने की महत्वाकांक्षा से कितने ओतप्रोत थे अथवा उनकी अपनी पार्टी के भीतर चल रहे अंतरविरोधों को वे अपने पक्ष में किस तरह साधने की कोशिश में लगे थे, पर लगभग एक तरह से ठंडे बस्ते में जा चुके मुद्दे को उन्होंने नया बखेड़ा अवश्य खड़ा कर दिया। यह कितना अच्छा होता कि इसके पहले वे देश की जनता को यह बताते कि पूर्व में लागू किए गए आरक्षण का लाभ उन लोगों को कितना मिल पाया जिन्हें वाकई इसकी आवश्यकता थी। यह इसलिए जरूरी था क्योंकि आमतौर पर यह देखने में आ रहा है कि अभी भी बहुत सारे पिछड़ों की हालत कमोबेश उसी तरह है जैसी पहले थी। आरक्षण का लाभ सर्वाधिक उन्हीं लोगों को मिल सका है जो पहले से ही सुविधा संपन्न थे। मेरिट का सवाल तो अभी भी अनुत्तरित है ही, सबसे विवादास्पद क्रीमीलेयर के मसले पर भी स्थिति अस्पष्ट नहीं की जा सकी है। फिलहाल जो सिफारिशें मोइली समिति ने की हैं उसमें भी क्रीमीलेयर को नहीं छुआ गया है और उस मसले को सरकार के जिम्मे छोड़ दिया गया है। इससे तो यही लगता है कि आरक्षण के सवाल को कभी हल ही नहीं किया जाएगा और जब-जब किसी को संकट से दो-चार होना पड़ेगा, नायकत्व व सत्ता की खातिर इसका उपयोग कर लिया जाएगा और उन लोगों को भगवान के भरोसे छोड़ दिया जाएगा जो अपनी मेहनत के बल पर और प्रतिभा की बदौलत कुछ करना चाहते हैं। अगर वे ऐसा मानते हैं कि उनका जीवन इस तरह के राजनीतिज्ञों की गलत नीतियों की वजह से नष्ट हो रहा है, तो किसी के पास उन्हें समझा पाने के लिए वाजिब तर्क नहीं होते और जो तर्क दिए जाते हैं उन्हें युक्ति संगत माना नहीं जा सकता।

अभी लोग यह भूले नहीं होंगे कि किन परिस्थितियों में राजा मांडा विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिशें लागू की थीं। अगर यह कहा जाता है कि सत्ता का संकट न होता तो शायद उस समय भी मंडल की रिपोर्ट फाइलों में ही कैद रहती तो इसमें कोई गलती नहीं है क्योंकि मंडल आयोग की रिपोर्ट कोई उस समय नहीं आई थी। वह उससे काफी पहले आ चुकी थी और जब आई थी तब भी विश्वनाथ प्रताप सिंह एक सत्ताधारी पार्टी के बड़े नेता थे लेकिन उन्होंने कभी इसके लिए कोई आवाज नहीं उठाई न कोई आंदोलन किया कि यह रिपोर्ट लागू की जानी चाहिए। अगर इसकी जरूरत थी और उस जरूरत को पूरा करने के लिए आयोग का गठन किया गया था तो उसकी रिपोर्ट आने के बाद भी लटकाए क्यों रखा जा रहा था। जाहिर है तब इसकी जरूरत नहीं महसूस की जा रही थी क्योंकि जिनके लिए इस आयोग का गठन किया गया था वे देश की सत्ताधारी पार्टी का वोट बैंक हुआ करते थे और जब वोट मिल ही रहा है तो लाभ देने की क्या जरूरत है। यह तो समय के फेर ने राजनीतिज्ञों को मजबूर करना शुरू किया और वे इसके चक्कर में पड़ने लगे। लेकिन यहां इस

सच्चाई को भी समझ लेना चाहिए कि जिस तरह राजनीतिक चतुराई से लागू की गई मंडल आयोग की सिफारिशों का लाभ अपेक्षित लोगों को नहीं मिल सका बल्कि उन्हीं लोगों को ज्यादा मिला जो पहले से ही सुविधा संपन्न थे, उसी तरह जिनके लिए वीपी सिंह ने बड़ा राजनीतिक दांव लगाया वही उन्हें भुला बैठे और मंडल के नायक अन्य लोग बन बैठे। यहां यह ध्यान रखने की बात है कि मंडल लागू करने की वजह से उससे लाभान्वित होने वालों का नायक बनना चाहिए था वीपी सिंह को तो वे सत्ता से बाहर कर दिए गए और सत्ता मिल गई लालू यादव और मुलायम सिंह यादव को।

इस अंतरविरोध को भी समझने की आवश्यकता है कि आखिर वे कौन से कारण हैं जिनके चलते तब देश की दो बड़ी राजनीतिक पार्टियां कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी मंडल आयोग की सिफारिशें लागू किए जाने और इसे लागू करने वाले वीपी सिंह का विरोध कर रही थीं, आज वही इसकी सबसे बड़ी पैरोकार बनकर सामने आ रही हैं। इस तरह की राजनीति का तात्कालिक रूप से किसी पार्टी अथवा नेता को भले ही लाभ मिल जाए पर देश और समाज को इसकी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है, इसे शायद निहित स्वार्थोंवश राजनीतिज्ञ भूल जाते हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है लेकिन यहां किसानों की समस्याओं को कोई देखना वाला नहीं है। बातें जरूर बड़ी-बड़ी की जाती हैं लेकिन उन्हें मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। हाड़तोड़ मेहनत के बाद पैदा किए गए उनके अनाज की कम कीमत लगाई जाती है और बाहर से ऊंचे दामों पर अनाज का आयात किया जाता है। जिस देश में जमींदारी प्रथा का एक झटके में खात्मा किया जा सकता है उसी देश में किसानों के हितों की अनदेखी की जा रही है तो उसके पीछे सबसे बड़ा कारण यही है कि वे एकजुट नहीं हैं और उनके वोट से किसी का कुछ बनने-बिगड़ने वाला नहीं है। यही कारण है कि सारी नीतियां पूंजीपतियों के हितों में बनाई जाती हैं और उन्हीं को लाभ पहुंचाया जाता है व सहूलियतें दी जाती हैं। वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्याओं को अगर चिह्नित किया जाए (हालांकि इसकी किसी को फुरसत नहीं है) तो पता चलेगा कि वह है किसानों द्वारा की जाने वाली आत्महत्या है। इसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा कि इस देश में यह कोई मुद्दा नहीं है। फीलगुड़ और इंडिया शाइनिंग के बावजूद वे जहर खाने और फांसी लगाने के लिए मजबूर हैं। अभी भी भूख से मरने की खबरें आती हैं यह अलग बात है कि सरकार इसे स्वीकार नहीं करती। गरीबों के इलाज तक की कोई समुचित व्यवस्था अभी तक उपलब्ध नहीं कराई जा सकी है।

यही वह तमाम कारण हैं जिनके चलते यह सवाल गंभीर बनता जा रहा है कि आखिर कब तक इस देश में आरक्षण की राजनीति का खेल खेला जाता रहेगा। जब देश का संविधान बन रहा था तब की परिस्थितियां भिन्न रही होंगी, क्या उनमें बदलाव की जरूरत नहीं है अथवा वे बदली नहीं हैं? जब आरक्षण की व्यवस्था बनाई गई थी तब भी समय और शर्तें तय की गई थीं। लेकिन अब तो लगता है कि उन्हें देखने वाला कोई नहीं है। मंडल आयोग की सिफारिशें लागू किए जाने के इतने वर्षों बाद भी अगर इनके हकदारों को बराबरी सरकारें और राजनीतिक पार्टियां नहीं दिला सकीं तो इसमें दोष उनका है, इसका खामियाजा वे क्यों भुगतते रहें जिनका इसमें कोई दोष नहीं है। इसलिए अब यह जरूरी हो गया है कि पूरी आरक्षण नीति की नए सिरे से समीक्षा की जाए और ऐसी नीतियां बनाई जाएं जिससे सभी को बराबरी का मौका मिल सके और किसी के साथ अन्याय न होने पाए।

कम से कम हर बच्चे के लिए शिक्षा की व्यवस्था और सभी के लिए रोजगार की गारंटी की जानी चाहिए। जब सभी को समान शिक्षा मिलेगी और सभी के पास काम होगा तो गैरबराबरी अपने आप समाप्त हो जाएगी। लेकिन यह सवाल अभी भी रह जाता है कि इसे करेगा कौन? कम से इन राजनीतिक दलों और इनकी सरकारों से तो ऐसी अपेक्षा नहीं की जा सकती। हां, इतना अवश्य है कि जो लोग अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा सकेंगे, उन्हें जरूर कुछ मिल सकेगा। अगर मोइली समिति ने नए आईआईएम खोलने की सिफारिश की है और सामान्य वर्ग के छात्रों के लिए सीटें बढ़ाने को कहा है तो इसके पीछे छात्रों की आवाज ही मुख्य कारण रही है अन्यथा यह भी हाथ से चला गया होता।

–संध्या शुक्ला

क्या कहना है मोइली समिति का?

मोइली समिति ने स्वीकृत किए गए मसौदे में सिफारिश की है कि शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की व्यवस्था एक साथ न कर चरणों में लागू किया जाए। समिति ने इसके लिए तीन चरणों का प्रस्ताव किया है। जो संस्थान एक या दो वर्ष में आरक्षण लागू कर सकते हैं, उन्हें इसकी छूट होगी लेकिन तीन वर्ष से ज्यादा समय किसी को भी नहीं दिया जाना चाहिए। समिति के मुताबिक आईआईएम और आईआईटी में तीन वर्ष में ही आरक्षण लागू हो पाएगा जबकि केंद्रीय विश्वविद्यालयों व दूसरे संस्थान इसे कम समय में लागू कर सकते हैं।

समिति ने सिफारिश की है कि तीन नए आईआईएम व आईआईटी जैसे संस्थान खोले जाने चाहिए। पिछड़ों को 27 प्रतिशत आरक्षण और सामान्य वर्ग के छात्रों के लिए उसी अनुपात में सीटों के लिए 54 प्रतिशत सीटें बढ़ाने की भी सिफारिश की है। इसे हर वर्ष 18 प्रतिशत के हिसाब से तीन वर्ष में बढ़ाया जाएगा। इस पर कुल 17,200 करोड़ रुपये का रेकरिंग व नान रेकरिंग व्यय होगा।

समिति भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आईआईटी) जैसे और अधिक संस्थान खोलने की भी सिफारिश करेगी। मसलन सूचना प्रौद्योगिकी जैसे संस्थानों को और ज्यादा खोला जाना चाहिए, जिसमें सरकारी के साथ ही फंडिंग के लिए निजी क्षेत्र की भागीदारी भी हो सके।

समिति की ओर से पिछड़ों को आरक्षण के साथ ही सरकार से उनके लिए दूसरे सकारात्मक कदम उठाने की भी सिफारिश की जाएगी। मसलन सरकार को पिछड़ों के बच्चों को कक्षा नौ से ही छात्रवृत्ति देने और ऐसे ही दूसरे उपाय करने को कहा जाएगा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि समिति ने सबसे अहम सवाल क्रीमीलेयर पर कुछ भी नहीं कहा और इसे सरकार के जिम्मे छोड़ दिया है।

ध्यान देने की बात है कि सरकार के सहयोगी व कुछ दूसरे दलों के नेताओं ने पिछड़ों के लिए एक ही बार में आरक्षण लागू करने की मांग की थी।

–रिंकी राय

एक और ओल्ड मैन इन हरी

त्रिलोकी राय

पूर्व प्रधानमंत्री एच डी देवेगौड़ा ने कांग्रेस के सीताराम केसरी को ओल्ड मैन इन हरी (जल्दबाज बुजुर्ग) कहा था। इसे लेकर राजनीतिक हलकों में बड़ी तेज प्रतिक्रिया हुई थी। खुद केसरी जी भी किसान नेता देवेगौड़ा की टिप्पणी से हतप्रभ तो थे ही, उनकी चमक भी कुछ देर के लिए गायब हो गई थी। लेकिन आज राजनीति के अखाड़े में उम्र के अंतिम चरणों में गुजर रहे कई (राजनेता) ओल्डमैन इन हरी नजर आने लगे हैं। इन्हीं में से संभवत: एक हैं केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री ठाकुर अर्जुन सिंह जी।

मंडल वन के जरिए विश्वनाथ प्रताप सिंह ने जब मंडल कमीशन की सिफारिशें लागू करने की घोषणा की थी, लोगों को लगा था कि वीपी मंडल की अनुशंसा वाली रिपोर्ट लागू होते ही समाज की शक्ल बदल जाएगी। पिछड़े तबके के लोगों के साथ-साथ अगड़ों की जमात में बराबर की हिस्सेदारी मिलेगी। लेकिन वीपी सिंह ने जब मंडल कमीशन की सिफारिशों में से एक नौकरियों में पिछड़ों के लिए आरक्षण लागू करने की बात कही तो बात बनने की जगह बिगड़ गई। इसके चलते वे जो कुछ कहना और करके पाना चाहते थे, नहीं हो पाया और जल्दी ही ऐसा वक्त आ गया कि वे बेहद अकेले हो गए।

आरक्षण का लाभ जिन वीपी सिंह को मिलना चाहिए था वह उन्हें नहीं मिला। अलबत्ता जिन्हें मिल पाया उनके दो उदाहरण सामने हैं। लालू प्रसाद यादव और मुलायम सिंह यादव।

इन दोनों नेताओं ने क्या किया यह अब परदे की बात नहीं रही। जिस वीपी सिंह की वैशाखी के सहारे दोनों पिछड़े वर्ग के नेताओं ने राजनीति का एक तरह से कहें तो ककहरा शुरू किया था मौका मिलते ही अपनी रफ्तार और धार दोनों बदल दी। गौरतलब है कि मंडल कमीशन की रिपोर्ट और वीपी सिंह की घोषणा में मामला अत्यंत अन्य पिछड़ी जातियों का था। विकास की रफ्तार तेज होनी चाहिए जैसी लगभग दस सिफारिशें इसमें शामिल की गई थीं। लेकिन परिस्थिति का माकूल उपयोग कर दोनों नेताओं ने वीपी सिंह की घोषणा के बाद अपने एजेंडे से अत्यंत शब्द निकाल दिया। बच गया सिर्फ अन्य पिछड़ा वर्ग। परिणाम हमारे सामने है कि वीपी सिंह राजनीति के अंधेरे वियावान में भटक रहे हैं और दोनों नेता अपने-अपने सूबे में (यूपी और बिहार) अंगद की तरह पांव जमाकर खड़े हैं। ये दोनों नेता अपने समाज में एक टिकाऊ राजनेता की हैसियत पा चुके हैं। इन्होंने इस रिपोर्ट में तब्दीली के जरिये अपनी पकड़ इस कदर मजबूत कर ली है कि आज तक उन्होंने अपने इलाके में किसी को पांव पसारने की बात तो दूर पैर रखने की भी मोहलत नहीं दी।

मुलायम सिंह ने उत्तर प्रदेश में कांग्रेस को हाशिए पर खड़ा कर दिया वहीं लालू प्रसाद यादव के चमत्कार का तो कहना ही क्या? लालू यादव ने सबसे पहले वर्गवादी विचार रखते हुए जाति को भी एक फिनामिना मानने वाली सीपीआई को हजम कर डाला। वह इस कदर कमजोर हो गई कि अब तक उसमें करवट लेने की भी ताकत नहीं आई।

वीपी सिंह ने जब मंडल कमीशन की सिफारिशों में से एक नौकरियों में पिछड़ों के लिए आरक्षण लागू करने की बात कही तो बात बनने की जगह बिगड़ गई। इसके चलते वे जो कुछ कहना और करके पाना चाहते थे, नहीं हो पाया और जल्दी ही ऐसा वक्त आ गया कि वे बेहद अकेले हो गए।

कमंडल के काट में विश्वनाथ प्रताप सिंह ने जो जल्दीबाजी मंडल रिपोर्ट लागू कर दिखाई थी उसकी मनचाही फसल वे नहीं काट पाए। जाति के समाज ने उन्हें हाशिए पर फेंक दिया। उनकी जल्दीबाजी काम नहीं आई और तीर निशाने से इतर गिरा। राजनीति के विश्लेषकों ने बाद में कहा भी कि अस्मितामूलक संगठन जब सक्रिय होकर सत्ता में आते हैं तो वे दल जो अस्मिताओं के जटिल गणित को नहीं समझते और अवसरवादी ढंग से उन्हें रेडिकलिज्म का आइटम मानकर खिंचे चले आते हैं, उन्हें उनके परंपरागत वर्ग छोड़कर चले जाते हैं। इसका जीवंत उदाहरण उत्तर प्रदेश की जमीन है जहां मुलायम सिंह और मायावती जबसे जाति अस्मिता का खेल खेलना शुरू किया, तबसे लगभग सभी आदर्शवादी दल दर्शन दीर्घा के एक कोने में बैठे हुए हैं।

मालूम हो कि जब देश में मंडल वन की बयार बही, देशव्यापी आंदोलन हुआ। छात्र इसके विरोध में सड़कों पर उतरे। पूरा उत्तर भारत इसकी चपेट में था। यह कहने में कोई गुरेज नहीं है कि आंदोलन को आगे बढ़ाने में जो सबसे तेज चिनगारी थी वह थी राजीव गोस्वामी के सफदरजंग चौराहे पर खुद को आग लगा लेने की तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र नेता संजय तिवारी के पुलिसिया लाठी से अधमरा होने की। ये दोनों छात्रनेता प्रोकांग्रेसी थे। लेकिन मजेदार बात यह है कि तब कांग्रेस [illegible] की चैंपियन नहीं बनी थी।

अब जबकि जमाना मंडल-टू का है, कांग्रेस चैंपियन बनने के लिए निकल पड़ी है। क्या यह विकास का सिद्धान्त है अथवा राजनीति में किसी जल्दीबाजी के जरिए मंजिल हासिल करने का शार्टकट तरीका? इस पर अलग से वैचारिक बहस की जा सकती है, लेकिन अब जबकि मंडल -2 का चारा फेंका जा चुका है तो साथ ही साथ चर्चा गरम हो चली है। मंडल -1 वी पी सिंह लेकर आए थे, मंडल-2 अर्जुन सिंह लाए हैं। दोनों ही नेता राजशाही पृष्ठभूमि से आते हैं। दोनों कभी दिवानेखास में बैठकर तथाकथित प्रजा का दुख-दर्द सुनने का स्वांग भरते रहे हैं। लेकिन दोनों में महत्वपूर्ण साम्य यह है कि दोनों ही पिछड़े वर्ग से नहीं है। वहीं एक समानता यह भी है कि दोनों द्वारा इस मामले में जल्दीबाजी का फार्मूला लागू किया गया है। वी पी सिंह को इतिहास में जाने की जल्दीबाजी थी, वे गए भी और आज इतिहास हैं भी। अर्जुन सिंह को किस बात की जल्दी है, कौन सा इतिहास जल्दी-जल्दी रचना चाहते हैं, यह एक रहस्यवादी किस्म का सवाल है जिसका उत्तर खोजा जाना बाकी है। वी पी। सिंह से यह पूछा जा सकता है कि क्या इतिहास में ऐसे ही जल्दीबाजी से जाया जाता है जैसे

भागते-भागते कोई ट्रेन पर चढ़ा रहा हो? अगर उनका उत्तर नहीं में है तो साफतौर पर कहा जा सकता है कि इतिहास में कभी भी किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता। फिर, मंडल-2 वाले अर्जुन सिंह को क्या जल्दी है, यह भी एक अनुत्तरित सवाल है। इसका उत्तर या तो वे खुद दे सकते हैं अथवा उनके निहितार्थों के फलितार्थ सामने आने पर विश्लेषक लोग।

एक तरह से उत्तर दिया जा रहा है कि मंडल-1 में जो कुछ गंवाया है उसे मंडल-2 के जरिए पाने की कवायद हो रही है। यह कवायद कांग्रेस कर रही है। यही कारण है कि मंडल-1 को लागू करने वाले ने जिस तरह की सख्ती बरती थी मंडल-2 अपेक्षाकृत उदार नजर आया है। अर्जुन सिंह खुद अन्य गरीब तबकों को भी लाभ देने की बात कर रहे हैं वहीं सीटें बढ़ाने के लिए भी लगातार सरकार पर दबाव बनाए हैं। यहां तक कि अर्जुन सिंह ने छात्रों पर हुए पुलिसिया हिंसा की भी निंदा की है। कहने में कोई गुरेज नहीं कि मंडल-2 के दौरान प्रगतिशीलों ने भी जो मंडल-1 के जमाने में एक हार्डलाइन लेकर चल रहे थे, छात्रों पर बर्बर हिंसा का विरोध किया है तथा अन्य गरीबजनों की सुधि लेने की वकालत की है। इस तरह मंडल-1 ने जातियों को उग्र बनाया तो अब मंडल-2 में सभी जातियां अपना निहित स्वार्थ तलाशने में जुट गई हैं। बताते हैं कि वी.पी.सिंह की तर्ज पर अर्जुन सिंह ने अपने तरकश से मंडल-2 का तीर निकाला था तो उसके दो आशय थे। पहला, मनमोहन सिंह और दूसरा उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश की राजनीति में कांग्रेस की जबर्दस्त वापसी।

मंडल-1 में देवीलाल के भूत से बचने की कवायद राजा मांडा ने की थी तो मंडल-2 में अर्जुन सिंह ने मनमोहन के ज्ञान आयोग को ठप करने के साथ ही सोनिया के राहुल को यूपी भेंट करने की मंशा पाल रखी है। कांग्रेस के रणनीतिकारों ने यह मान लिया है कि उत्तर प्रदेश पूरी तरह से मंडलवालियों के हाथ में है जब तक मंडलवाद के इस आधार में सेंध नहीं लगाई जाती तब तक यूपी का मोर्चा फतह करना आसान नहीं है।

सो श्री सिंह ने आनन-फानन में सोनिया के दरबार में मनमोहन के विरोध के बावजूद मंडल-2 की रणनीति हाजिर कर दी। ऐसा नहीं कि अर्जुन के इस तीर से अन्य वाकिफ नहीं है। आपको याद हो तो खुद मुलायम सिंह यादव ने अपने एक सेनापति बेनी प्रसाद वर्मा के मुंह से हाल में ही कहलवाया है कि अगड़ों में गरीबों को भी आरक्षण दिया जाना चाहिए। लालटेन वाले लालू भी लंबी चुप्पी के बाद इसी तरह का तराना दुहराते नजर आ रहे हैं। असली मंडलवाले अब अन्य दरिद्रों की बात करने लगे हैं।

मुलायम बखूबी समझ गए हैं कि यूपी का चुनाव कहीं न कहीं मंडल-2 के इस ब्रह्मास्त्र के टारगेट पर है। और भी कई तरह की बातें हैं। लेकिन लाख टके का सवाल यह वहीं का वहीं खड़ा है कि मंडल-2 के जरिए जल्दीबाजी में अर्जुन सिंह क्या चाहते हैं? उत्तर प्रदेश हासिल करना, बिहार में पैर जमाना, मध्यप्रदेश-राजस्थान में सिक्के स्थापित करना अथवा प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की जगह खुद को स्थापित करना?

यह सब सवाल राजनीति के गलियारे में तिर रहे हैं। अगर यह कहा जाए कि अर्जुन सिंह के मंतव्य उपरोक्त ही हैं तो निश्चित रूप से इस पर अन्य राजनीतिक दल भी गौर फरमा रहे हैं और नहीं तो यह तय है कि मंडल-1 को लेकर आए वी.पी. सिंह इतिहास बनाने की जल्दी में जिस तरह खुद इतिहास बन गए, ठीक उसी तर्ज पर यह समाज अर्जुन सिंह को भी इतिहास का दरवाजा दिखा सकता है। □

बस राह बनाना बाकी

१९९१ में शुरू हुए आर्थिक उदारीकरण के बाद देश की अर्थव्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन हुए हैं। तमाम बदलावों की तरह ही खुली अर्थव्यवस्था के दौर में सरकारी नौकरियों का क्रे ज भी धीरे-धीरे कम हुआ है और इसका सीधा असर पड़ा आरक्षण पर। हालांकि उसके ठीक पहले वी पी सिंह ने प्रधानमंत्री रहते हुए मंडल कमीशन को लागू कर आरक्षण के जिन्न को बोतल से बाहर निकाल दिया था, लेकिन खुली अर्थव्यवस्था ने उस जिन्न को वापस बोतल में बंद कर दिया। सरकार पर भी अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और वर्ल्ड बैंक जैसी संस्थाओं ने खर्च में कटौती करने का भारी दबाव डाला और इसका असर हुआ सरकारी नौकरियों में भारी कटौती।

आरक्षण का विरोध करने वालों के लिए अब आरक्षण मुद्दा नहीं रहा, क्योंकि इनके लिए निजी क्षेत्र में वो तमाम संभावनाएं मौजूद थीं जो अब तक सिर्फ सरकार के पास हुआ करती थी लेकिन आरक्षण को सामाजिक न्याय का हथियार मानने वालों को खुली अर्थव्यवस्था ने तगड़ा झटका दिया। खुली अर्थव्यवस्था का सबसे ज्यादा फायदा मिला पढ़े-लिखे तबके को, जिसने या तो मैनेजमेंट किया हुआ था या फिर इंजीनियर थे। यानि सरकारी नौकरियों की चाह में कंपटीशन की तैयारी कर रहे लड़के पिछड़ गए। वो तबका भी अपने को ठगा महसूस करने लगा जिसे आरक्षण के चलते समाज की मुख्य धारा में शामिल होने का मौका मिला था।

इसी का नतीजा हुआ कि सामाजिक न्याय के पैरोकार निजी क्षेत्र में भी आरक्षण की मांग करने लगे। खासतौर से दलित और आदिवासी समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टियां इसका पैरोकार बनीं। इस मुद्दे को सबसे ज्यादा आवाज दी दलित नेता राम विलास पासवान ने। यूपीए सरकार में सामाजिक न्याय मंत्री मीराकुमार ने निजी क्षेत्र में आरक्षण के लिए कानून बनाने की मांग की। हालांकि उनकी मांग पर उन्हीं के सहयोगियों ने कुछ खास तवज्जो नहीं दी। लेकिन सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग को आगे बढ़ाने की बात पर सब एक राय थे। यानी आरक्षण के विरोध में कोई भी नेता या पार्टी बोलने के लिए तैयार नहीं।

आरक्षण के खिलाफ आवाज उठी तो खुद निजी क्षेत्र से। जाने-माने उद्योगपति राहुल बजाज आरक्षण के खिलाफ खूब बोले। उनके सुर में सुर मिलाया रतन टाटा ने। भारत के सबसे बड़े औद्योगिक घराने के चेयरमैन रतन टाटा ने तो आरक्षण को समाज के भष्मासुर की संज्ञा ही दे दी। लेकिन आरक्षण के पैरोकारों का दबाव काम आया है और ताल ठोककर सरकार के खिलाफ खड़ा हो गया निजी क्षेत्र भी कुछ झुका है। उसका कहना है कि नौकरियों में आरक्षण के अलावा दलित और वंचित तबकों के लिए सरकार जो भी योजना लाती है उसमें वह सहयोग देगा। यानी कि प्रवेश संभव है बस राह बनानी बाकी है।

-देवेंद्र

अब तीसरी सिफारिश को लेकर चर्चा

टेपेइंग पीटर राबिंग पाल- हालांकि मध्य युगीन यूरोपीय समाज में अंग्रेजी की यह कहावत दंतकथाओं में प्रमुखता से शुमार थी। लेकिन आजकल भारत में मंडल कमीशन की तीसरी सिफारिश को लेकर इसकी खूब चर्चा है। वी.पी. सिंह की मंडल कमीशन की सरकारी नौकरियों में आरक्षण की पहली सिफारिश तथा अर्जुन सिंह की उच्च शिक्षण संस्थानों में पिछड़े वर्ग के छात्रों के दाखिले की सिफारिश के बाद केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय मंडल आयोग की तीसरी सिफारिश को अमलीजामा पहनाने में जुट गया है।

वी.पी. मंडल आयोग ने पिछड़ी जातियों की दीन-दशा सुधारने के लिए जो प्रस्ताव पेश किया था उसमें मोटेतौर पर कुल 12 सिफारिशें थीं जिनमें तीसरी सिफारिश आरक्षित वर्ग के छात्रों की फीस कम करने की है। मंत्रालय ने इस तीसरी सिफारिश के मद्देनजर जो मसौदा तैयार किया है उसके मुताबिक देश के सभी गैरसरकारी उच्च शिक्षण संस्थानों में अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़ों के लिए फीस कम करने का प्रावधान किया गया है। वहीं फीस कम करने वाले संस्थानों को यह छूट देने की व्यवस्था की गई है कि वे फीस की कमी से हुए अपने घाटे की भरपाई सामान्य वर्ग और एनआरआई वर्ग के छात्रों की फीस बढ़ाकर कर सकते हैं।

मंत्रालय ने इस बाबत एक प्राधिकरण गठित करने का फैसला किया है। जो कि सभी राज्यों के साथ बातचीत कर फीस का ढांचा निर्धारित करेगा। वहीं प्राधिकरण को यह ताकत दी जाएगी कि वह शिक्षण संस्थानों में आरक्षित वर्ग के छात्रों के लिए फीस का तय प्रारूप सख्ती से लागू करवा सके। सरकार की मंशा है कि उक्त प्रस्ताव को जल्द से जल्द से कानूनी शक्ल दी जाए। सरकार इसे संसद के शीतकालीन सत्र में पेश करने की तैयारी कर रही है।

मंडल-2 की आग अभी पूरी तरह बुझी नहीं थी कि चुरहट सम्राट के इशारे पर मंडल-3 का ताना-बाना मंत्रालय ने पूरी तरह से बुन डाला है। मजे की बात यह है कि शिक्षण संस्थानों पर आरक्षित वर्ग के छात्रों के लिए फीस कम करने का दबाव तो बनाया ही गया है, दूसरी तरफ सामान्य और एनआरआई वर्ग के छात्रों पर इस कमी का बोझ लादने का तुगलकी इंतजाम भी किया गया है। मंत्रालय ने इस बाबत जो मसौदा तैयार किया है, अगर हूबहू उसे लागू किया जाता है तो सामान्य वर्ग के छात्रों पर यह पहले की दो सिफारिशों की तुलना में ज्यादा भारी पड़ेगा।

मालूम हो कि काका साहब केलकर आयोग की सिफारिशें पंचवर्षीय योजना की बिना पर पंडित नेहरू द्वारा खारिज किए जाने के बाद वर्ष 1978 में वी.पी.मंडल की अध्यक्षता में मंडल आयोग का गठन किया गया था। 14 सदस्यीय इस आयोग ने वर्ष 1980 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में अत्यंत अन्य पिछड़ी जातियों के आर्थिक, सामाजिक एवं सबसे महत्वपूर्ण शैक्षणिक विकास के लिए लगभग एक दर्जन सिफारिशें की थी। 7 अगस्त 1990 को तत्कालीन प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह ने आयोग की सिफारिशों का एक हिस्सा लागू किया। वह हिस्सा पिछड़ों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण को लेकर था।

मंत्रालय ने इस तीसरी सिफारिश के मद्देनजर जो मसौदा तैयार किया है उसके मुताबिक देश के सभी गैरसरकारी उच्च शिक्षण संस्थानों में अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़ों के लिए फीस कम करने का प्रावधान किया गया है। वहीं फीस कम करने वाले संस्थानों को यह छूट देने की व्यवस्था की गई है कि वे फीस की कमी से हुए अपने घाटे की भरपाई सामान्य वर्ग और एनआरआई वर्ग के छात्रों की फीस बढ़ाकर कर सकते हैं।

हालांकि इस रिपोर्ट के लागू होने के बाद देश भर में प्रतिक्रिया हुई। जगह-जगह जाति युद्ध शुरू हुआ। कहने में संकोच नहीं कि लगभग समरसता की ओर बढ़ रहे समाज ने रिपोर्ट लागू होने के बाद जातीयता के जहर ने एक दीवार सी खड़ी की। गत 5 अप्रैल 2006 को वर्तमान केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह ने आयोग की सिफारिशों का दूसरा हिस्सा लागू किया। इस हिस्से में पिछड़ों के लिए आईआईटी और आईआईएम जैसे उच्च शिक्षण संस्थानों में पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत आवश्यक प्रवेश की बात की गई है। श्री सिंह द्वारा मंडल आयोग की सिफारिश का दूसरा हिस्सा लागू किए जाने के बाद भी पहले की ही तर्ज पर देश भर में विरोध हुआ।

यह अलग बात है कि वर्तमान विरोध में डाक्टरों और इंजीनियरिंग कालेज के छात्रों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। इसका सीधा कारण है कि चूंकि हमला उच्च संस्थानों पर था, इसलिए विरोध में भी प्रमुखता से यही लोग उठे। अब सरकार संविधान के 104वें संशोधन के जरिए मंडल आयोग सिफारिश का तीसरा तर्जुमा पेश करने को तैयार है। यह सिफारिश गैर सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान जिनकी फीस सरकारी संस्थानों की तुलना में लगभग 20-50 गुना ज्यादा हैं, को आरक्षित वर्ग के लिए कम करने का है। एमिटी, एपीजे, आईआईएमटी, ईशान, हेलीहिवेन जैसे बड़े निजी संस्थान इस प्रस्तावित मसौदे पर सरकार के कहे के मुताबिक आरक्षण की कोटि वाले छात्रों की फीस कम कर लेने की बात दबे मन से ही सही, स्वीकार कर रहे हैं। लेकिन इसकी भरपाई सामान्य वर्ग के छात्रों से की जाए, यह बात उनके गले भी नहीं उतर रही है।

फीस को लेकर रोज-रोज की दिक्कतों का सामना कर रहे शिक्षण संस्थानों के कर्त्ता-धर्ता लोगों का दो-टूक कहना है कि सरकार आरक्षित कोटे के छात्रों की फीस अवश्य कम करे, लेकिन इसका भार सामान्य वर्ग के लोगों पर कतई नहीं डाला जाना चाहिए। वहीं शिक्षा और कानून के क्षेत्र से जुड़े लोगों की भी राय है कि सरकार अगर फीस कम करके आरक्षित कोटे के छात्रों का दाखिला सुनिश्चित करना चाहती है तो इन पर होने वाले खर्च का जिम्मा सरकार को खुद उठाना चाहिए।

-मनीष कुमार गुप्त

दशकों से पनप रहे आक्रोश का नतीजा है आंदोलन

अरविंद कुमार

उच्च शैक्षणिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्ग के छात्र-छात्रों के लिए 27 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का मेडिकल छात्रों का विरोध कोई त्वरित घटना नहीं है। बल्कि उनका आंदोलन दशकों से उनके अंदर पनप रहे आक्रोश का नतीजा है। पिछले डेढ़-दो दशकों में राजधानी के पांचों मेडिकल कालेजों अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स), वर्दमान महावीर मेडिकल कालेज (सफदरजंग), लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज, मौलाना आजाद मेडिकल कालेज और यूनिवर्सिटी कालेज आफ मेडिकल साइंसेज, यूसीएमएस, जी टीवी अस्पताल में सीटों की संख्या में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की गई। सरकारी डाक्टरों के पदों की संख्या में बढ़ोत्तरी के बजाए कमी की गई जबकि आबादी और बीमारी में तुलनात्मक तौर पर गुणात्मक इजाफा हुआ है। देश में ऐसा राजनीतिक ताना-बना बुना गया है कि डाक्टरों को देश छोड़कर भागने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। कुछ विदेशों में अधिक संभावना को लेकर भाग रहे हैं तो अधिकांश डाक्टर मजबूरी में देश छोड़ने को बाध्य हो रहे हैं। दशकों के आक्रोश के रूप में उभरे मंडल-2 विरोधी आंदोलन का नेतृत्व करने वाले मेडिकल छात्र-छात्राएं व डाक्टरों से विस्तृत बातचीत पर आधारित प्रस्तुत है एक रिपोर्ट-

विरोध तब भी हुआ था जब वी.पी.सिंह की सरकार ने मंडल कमीशन की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा की थी। अन्य पिछड़ी जाति का आरक्षण विरोधी आंदोलन इतना उग्र हो गया था कि छात्रों ने आग लगाकर अपने को जलाना शुरू कर दिया था। विरोध का मुद्दा स्पष्ट था। सामान्य वर्ग के छात्रों के लिए रोजगार का अवसर कम था। फिर भी मंडल कमीशन की सिफारिशें लागू हो गई और घटती सरकारी नौकरियों के बावजूद देश में इस मुद्दे पर सब कुछ सामान्य हो गया। अब जबकि मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह ने शिक्षण संस्थानों में ओबीसी छात्रों के लिए आरक्षण लागू करने की बात कही तो दिल्ली के पांचों मेडिकल कालेजों के छात्र इसके विरोध में सड़क पर उतर आए। कहने को इस आंदोलन में दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, आईआईटी जैसे तमाम शैक्षिक संस्थाओं के छात्र-छात्राओं ने हिस्सा लिया लेकिन पूरे आंदोलन का केंद्रबिंदु मेडिकल के छात्र-छात्राएं बने रहे।

वी.पी.सिंह के मंडल कमीशन का विरोध स्पष्ट था कि सरकारी नौकरियों में सामान्य वर्ग के छात्रों के रोजगार के अवसर में कमी। इसलिए आंदोलन के तमाम पहलुओं को देश की आम जनता समझती थी। लेकिन मंडल-2 के विरोधी आंदोलन को आम जनता ने ठीक तरीके से नहीं समझा। सरकार बार-बार कहती रही कि आरक्षण में जितनी सीटें कम होंगी उतनी सीटें बढ़ा दी जाएंगी फिर भी आंदोलनकारी छात्र-डाक्टर मानने को तैयार नहीं थे।

मंडल-2 का सबसे बड़ा निशाना मेडिकल कालेज- शैक्षणिक संस्थानों में इंजीनियरिंग और मेडिकल कालेज सबसे उच्च और महत्वपूर्ण हैं। जहां से पढ़ाई करके निकलने के बाद छात्र सीधे प्रतिष्ठित नौकरी में प्रवेश करते हैं। इंजीनियरिंग में सीटों की संख्या अधिक है जबकि मेडिकल कालेज व उनमें सीटों की संख्या बहुत ही सीमित है। सारे मेडिकल कालेजों में पूरी क्षमता से संचालित होने के बाद भी दिल्ली में 500 सीट है। व्यापक इंफ्रास्ट्रक्चर तैयार करने के बाद कुछ सीटों की संख्या में बढ़ोत्तरी तो की जा सकती है, लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह संभव नहीं है। हाल के वर्षों में मेडिकल साइंस के क्षेत्र में काफी तब्दीली आई है। सिर्फ एमबीबीएस डाक्टरों का मेडिकल क्षेत्र में कोई महत्व नहीं रह गया है। इंजीनियरिंग की साधारण बीटेक डिग्री लेकर कोई छात्र जीवन भर इंजीनियर की नौकरी कर सकता है, लेकिन एमबीबीएस के बाद अगर पीजी, एमडी, एमएस जैसी कोई डिग्री छात्र के पास नहीं है तो उस डाक्टर की कोई कीमत नहीं है। फिर, सुपरस्पेशिएलटी का प्रचलन बढ़ गया

इंजीनियरिंग में सीटों की संख्या अधिक है जबकि मेडिकल कालेज व उनमें सीटों की संख्या बहुत ही सीमित है। सारे मेडिकल कालेजों में पूरी क्षमता से संचालित होने के बाद भी दिल्ली में 500 सीट है। व्यापक इंफ्रास्ट्रक्चर तैयार करने के बाद कुछ सीटों की संख्या में बढ़ोत्तरी तो की जा सकती है, लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह संभव नहीं है। हाल के वर्षों में मेडिकल साइंस के क्षेत्र में काफी तब्दीली आई है। सिर्फ एमबीबीएस डाक्टरों का मेडिकल क्षेत्र में कोई महत्व नहीं रह गया है।

है। इसकी भी डिग्री अलग से लेनी पड़ती है। एमबीबीएस के इन तमाम डिग्री के लिए छात्र-छात्राओं को फिर से दाखिले की पूरी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। एमबीबीएस के बाद पढ़ाई करने के लिए दाखिला लेना दुरूह काम है क्योंकि सीटों की संख्या 5-10 साल में इक्का-दुक्का बढ़ती है। इसमें भी एससी-एसटी के बाद अगर पिछड़े वर्ग को भी आरक्षण दे दिया जाए तो सामान्य वर्ग के छात्रों के लिए रोटेशन से प्रवेश पाने के लिए कम से कम 5 वर्ष तक इंतजार करना पड़ेगा। एक तरह से सामान्य वर्ग के छात्रों के लिए दाखिला लेना असंभव हो जाएगा।

गौरतलब है कि 5 वर्ष की कठिन मेहनत व लाखों रुपए खर्च करके सामान्य कोटि का कोई छात्र एमबीबीएस की डिग्री हासिल करता है, दूसरी तरफ जब उसे किसी स्पेशलाइज डिग्री में प्रवेश नहीं मिलता है तो उसकी एमबीबीएस की डिग्री बेकार हो जाती है। अब अगर छात्र स्पेशलिटी में प्रवेश के लिए रोटेशन के जरिए 3-5 साल अपने दाखिले का इंतजार करता है तो इस बीच उसकी 5 साल पहले पढ़ी हुई एमबीबीएस की पढ़ाई लगभग बेकार होती जाती है। ऐसे में मेडिकल छात्रों के आंखों के सामने दूर-दूर तक अंधेरा ही नजर आ रहा है।

राजनीति पर ऐतबार नहीं-

मंडल-2 विरोधी आंदोलन को समाप्त करने के लिए राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तक ने आंदोलनकारी छात्र-छात्राओं और डाक्टरों को समझाने की कोशिश की। कई

दौर की वार्ता हुई लेकिन आंदोलनकारियों पर कोई असर नहीं हुआ। आंदोलनकारियों को राजनेताओं के किसी आश्वासन पर ऐतबार नहीं हुआ।

सरकार ने आश्वासन दिया कि ओबीसी के आरक्षण से जितनी सीटों की कमी होगी, सामान्य के लिए उतनी ही सीटें बढ़ा दी जाएंगी लेकिन छात्रों को यह घोषणा खोखला आश्वासन लगी। छात्रों का मानना है कि मेडिकल कालेजों में इस समय अधिकतम क्षमता में सीटें उपलब्ध हैं और सीट बढ़ाने के लिए कई प्रकार की जो मूलभूत संरचनाओं की आवश्यकता होती है, इसके लिए जमीनी स्तर पर व्यापक योजना बनाने और उसके क्रियान्वयन की जरूरत होती है। ये सारे काम महज आश्वासन से नहीं पूरे किए जा सकते।

न्यायिक समिति का गठन-

आरक्षण से अपनी मिटती हस्ती देखकर छात्र-छात्राओं और डाक्टरों ने पूरी आरक्षण प्रणाली पर गहन चिंतन किया और इस चिंतन के नतीजे को समाज व सरकार के सामने लाने की कोशिश की। उनका मानना है कि आरक्षण निचले तबके के लोगों को देश की मुख्य धारा में जोड़ने के लिए शुरू किया गया था। उनके मन में कई सवाल हैं। 50 वर्षों में आरक्षण से किन लोगों को लाभ हुआ? एक ही परिवार के लोगों को आरक्षण का अनवरत लाभ क्यों दिया जाता है? आरक्षण से गुणवत्ता पर क्या असर पड़ा? इन सारे प्रश्नों के जवाब में उन्होंने एक न्यायिक समिति के गठन की मांग की जो राजनीति से पूरी तरह अलग हो। लेकिन सरकार इसके लिए कभी तैयार नहीं हुई।

आंदोलनकारी मेडिकल छात्रों और डाक्टरों का मानना है कि निचले तबके लोगों को केवल आरक्षण देने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता। उनमें मानव संसाधन विकास करने की जरूरत है ताकि वे प्रतियोगिता में सामान्य वर्ग के छात्रों के समकक्ष खड़ा हो सकें। इसके लिए जरूरी है कि प्राथमिक स्तर पर विकास के लिए माकूल व्यवस्था की जाए। उनके लिए अलग से संस्थान खोले जाएं जहां उच्चस्तरीय शिक्षा का इंतजाम हो।

स्थापित प्रणाली में किसी को निर्धारित मापदंडों से कम अंक में पास कराने का सीधा अर्थ गुणवत्ता से समझौता करना है। डाक्टरों के हाथों में मरीजों का जीवन होता है। जरा सी चूक से मरीजों की जीवन लीला इस पार से उस पार हो सकती है। जरा सी भूल जब इस कदर घातक साबित हो सकती है तो निर्धारित मानदंड से नीचे उतरने का सीधा अर्थ है कि मरीजों के जीवन के साथ खिलवाड़ करना है। डाक्टरी पेशे में आरक्षण देने को किसी भी दृष्टिकोण से सही नहीं ठहराया जा सकता है। □

कशमकश

मेरे अल्लाह
मैं किधर जाऊं?

फिर फितरत ने आग भड़काई, दो हरीफों में है सफ-आराई
इक तरफ कैसरी व दाराई, इक तरफ मुफलिसी है झल्लाई
मेरे अल्लाह
मैं किधर जाऊं?

इक तरफ जोर है हुकूमत है, माल है, मुल्क है, सियासत है
इक तरफ जलजले है, मेहनत है, शोर है, जोश है, बगावत है
मेरे अल्लाह
मैं किधर जाऊं?

इक तरफ असलहे खड़कते हैं, बैंड से दश्त-ओ-दर धड़कते हैं
इक तरफ सिर्फ दिल फड़कते हैं, जैसे आतिशकदे भड़कते हैं
मेरे अल्लाह
मैं किधर जाऊं?

मुंह खुला है उधर खजाने का, मुड़ रहा है वरक जमाने का
और इधर कहत दाने-दाने का, कस्द फिर भी पहाड़ ढाने का
मेरे अल्लाह
मैं किधर जाऊं?

जब उधर की हवाएं आती हैं, दिल के हर तार को बजाती हैं
इस तरफ जब निगाहें जाती हैं, बिजलियां सर में कड़कड़ाती हैं
मेरे अल्लाह
मैं किधर जाऊं?

उनको रहमत का वोट हासिल है, उनमें फितरत का जोर शामिल है
बीच में हूं अजीब मुश्किल है, इक तरफ आंख, इक तरफ दिल है
मेरे अल्लाह
मैं किधर जाऊं?

जज्ब होने जो उनमें जाता हूं, खुद को कुछ अजनबी-सा पाता हूं
करके हिम्मत उधर जो आता हूं, नाम अजदाद का हंसाता हूं
मेरे अल्लाह
मैं किधर जाऊं?

तू न देगा अगर जवाब मुझे, मार डालेगा इज्तराब मुझे
खुद नहीं सोचने की ताब मुझे, खींचे लेता है इंकलाब मुझे
मेरे अल्लाह
मैं किधर जाऊं?

-कैफी आजमी

नवंबर अंक

फांसी की सजा को लेकर एक बार फिर बहस तेज हो गई है। यह एक ऐसा मुद्दा है जो लंबे समय से विवाद का कारण रहा है। जब भी कोई इस तरह की सजा की बात होती है, विभिन्न तरह के विचार सामने आने लगते हैं। अपराध, उसके तरीके और दंड से लेकर समाज और सुधार की बातें की जाने लगती हैं। कानूनों की भी व्याख्या और उनमें समय के अनुरूप बदलाव की आश्यकता पर विचार-विमर्श शुरू हो जाता है। अब एक बार फिर वह सब कुछ सामने है। इसलिए किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए निश्चित रूप से यह एक गंभीर विषय है जिस पर बात की ही जानी चाहिए। लेखक-विचारकों अपनी बेबाक टिप्पणियां अथवा इससे संबंधित अन्य सामग्री हमें भेज सकते हैं।

संपादक

निजी क्षेत्र में आरक्षण

पूरी तरह सचेत होकर आगे बढ़ने की जरूरत

निजी क्षेत्र में आरक्षण आज एक गरमागरम बहस का मुद्दा बन गया है। सरकार कृषि क्षेत्र में भी, जो कि निजी क्षेत्र ही है,आरक्षण की बात सोच सकती है। अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहां श्रम शक्ति का जबरदस्त अभाव है। किसानों को 50 फीसदी काम किसी भी समुदाय को देने में कोई परेशानी नहीं है। पर क्या कोई बेहद कम वेतन पर ऐसे हाड़ तोड़ काम करने के लिए आगे आएगा?

रोजगार गारंटी स्कीम (ईजीएस) पर अमल का अनुभव बिलकुल उलट है। सरकार को इस क्षेत्र में बेहद सावधानीपूर्वक आगे बढ़ना होगा।

केंद्र की संप्रग सरकार ने कृषि क्षेत्र में श्रम शक्ति की सप्लाई के लिए दो खास किस्म के वायदे कर रखे हैं। इस तरह का एक सुझाव संसद में एक निजी प्रस्ताव के रूप में सामने आया जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की ही तरह निजी क्षेत्र में भी अनुसूचित जाति, जनजाति व अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण की व्यवस्था लागू करने की सिफारिश की गई।

इस निजी प्रस्ताव का कोई खास महत्व नहीं रह गया क्योंकि सरकार ने खुद ही निजी क्षेत्रों में आरक्षण लागू करने की अपनी मंशा का इजहार कर दिया। आरक्षण का दायरा निजी क्षेत्रों में बढ़ाने का सिद्धांत कुछ साल पहले मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह की अध्यक्षता में हुई भोपाल कांफ्रेंस में प्रतिपादित किया गया था। (जनवरी २००२ में मध्य प्रदेश सरकार ने दलितों के सामने दरपेश समस्याओं पर चर्चा करने के लिए भोपाल में एक कांफ्रेंस आयोजित की थी और कांफ्रेंस के बाद एक दस्तावेज जारी किया था जिसमें विकास के फलों में दलितों की वाजिब हिस्सेदारी की मांग की गई थी। यह एक कोशिश थी दलित संबंधी चिंता को मुख्यधारा में लाने की खासकर मध्यप्रदेश में और इसके बाद तैयारी थी इसे देश भर में फैलाने की)।

महाराष्ट्र सरकार ने निजी क्षेत्रों में आरक्षण लागू कराने की कोशिश की पर बड़े निजी क्षेत्रों ने इस पर कोई उत्साह नहीं दिखाया। राज्य सरकार अब निजी क्षेत्रों के अगुवाओं को यह समझाने का प्रयास कर रही है कि वे आगे आएं और इस अनिवार्यता को स्वीकार करें।

आरक्षण का दायरा निजी क्षेत्र तक बढ़ाने की सबसे बड़ी दलील यह कि निजी क्षेत्र भी खुद को उन व्यापक सामाजिक लक्ष्यों के साथ अपने को जोड़ें जिनका अनुसरण सरकार कर रही है । सरकार के खजाने में टैक्स भर देने मात्र से निजी कंपनियों के सामाजिक दायित्व पूरे नहीं हो जाते । भारत में अनेक मामलों में, निजी क्षेत्र की फर्मों को सरकार न सिर्फ इंफ्रास्ट्रक्चर और धन ही मुहैया कराती है बल्कि उन्हें विदेशी और घरेलू प्रतियोगिताओं में संरक्षण भी प्रदान करती है जिसके बिना मुनाफा तो क्या उन्हें अस्तित्व बचाए रखना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए निजी क्षेत्र की भी जिम्मेदारी बनती है कि वह सरकार के सामाजिक समानता और न्याय के ध्येय को आगे बढ़ाने में सरकार के साथ कदमताल करे।

आरक्षण का दायरा निजी क्षेत्र तक बढ़ाने की सबसे बड़ी दलील यह कि निजी क्षेत्र भी खुद को उन व्यापक सामाजिक लक्ष्यों के साथ अपने को जोड़ें जिनका अनुसरण सरकार कर रही है । सरकार के खजाने में टैक्स भर देने मात्र से निजी कंपनियों के सामाजिक दायित्व पूरे नहीं हो जाते । भारत में अनेक मामलों में, निजी क्षेत्र की फर्मों को सरकार न सिर्फ इंफ्रास्ट्रक्चर और धन ही मुहैया कराती है बल्कि उन्हें विदेशी और घरेलू प्रतियोगिताओं में संरक्षण भी प्रदान करती है जिसके बिना मुनाफा तो क्या उन्हें अस्तित्व बचाए रखना मुश्किल हो जाएगा।

निजी क्षेत्र के प्रवक्ता इस मुद्दे पर गंभीर आशंकाएं व्यक्त कर चुके हैं। उन्हें डर है कि अगर उनके कार्मिक सख्ती के साथ मेरिट की बुनियाद पर नहीं चुने जाते तो ग्लोबलाइजेशन और विश्वव्यापी प्रतियोगिता के मौजूदा दौर में उनका अपना अस्तित्व बनाए रखना मुश्किल हो जाएगा। उनका कहना है कि वे टैक्स अदा करके अपना सामाजिक दायित्व पूरा कर देते हैं। इसके अलावा निजी क्षेत्र की ज्यादातर कंपनियां अपने स्वयं के झुकाव और प्राथमिकताओं के मुताबिक सामाजिक गतिविधियां चलाती रहती हैं। सरकार जिसकी भी हो, निजी क्षेत्र के लिए ऐसा बाध्यकारी कोई नियम नहीं है कि सामाजिक और नैतिक मूल्यों को आगे बढ़ाने में वे अपनी हिस्सेदारी निभाएं।

अब एक नजर इस पहलू पर। आरक्षण लागू करने का अब तक का हमारा अनुभव क्या रहा? यहां तक कि देश की सर्वोच्च अदालत ने भी माना है कि आरक्षण के लाभ संबंधित समुदायों की मलाईदार परत (क्रीमीलेयर) को हासिल हुए हैं। आरक्षण से लाभान्वित होने वाले समुदाय के राजनीतिक नेतृत्व को भी इससे काफी फायदा पहुंचा है और उसके लिए वोट हथियाने का एक राजनीतिक हथियार बन गया है। कैसे भी देखें तो 50 फीसदी आरक्षण पर ही अमल हो पाया है।

एक सवाल यहां यह उठता है कि निजी क्षेत्र पर आरक्षण का फंदा कसने से पहले सरकार अपने कोटे के आरक्षण का सौ फीसदी इस्तेमाल सुनिश्चित करने की कोशिश क्यों नहीं करती? एक सवाल यहां यह उठता है कि निजी क्षेत्र है क्या? स्पष्ट रूप से कुछ बड़ी कंपनियां आरक्षण के सुझाव को मान चुकी हैं और पिछड़ी जातियों के नेता इससे बेहद उत्साहित हैं। पर निजी क्षेत्र में इस तरह की बड़ी कंपनियां इतनी ज्यादा हैं ही नहीं।

कृषि का क्षेत्र भी निजी क्षेत्र ही है। देश के अनेक हिस्सों में किसान श्रम शक्ति की भारी किल्लत का सामना कर रहे हैं। वे किसी भी समुदाय को 50 फीसदी काम आसानी से मुहैया करा सकते हैं पर कोई आगे नहीं आ रहे हैं। शायद इसलिए कि यहां काम तो हाड़ तोड़ है पर उसके मुकाबले मजदूरी बहुत ही कम है। आरक्षण के पैरोकार इसमें दिलचस्पी नहीं लेते। वे आरक्षण के जरिये अपने

लोगों को मोटी तनख्वाहों वाली नौकरियां दिलवाने में दिलचस्पी रखते हैं। संप्रग सरकार ने अपने न्यूनतम साझा कार्यक्रम के तहत किसी भी समय ऐसा विधेयक लाने का वायदा कर रखा है जिससे गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के कम से कम एक सदस्य को सौ दिनों का सुनिश्चित रोजगार मिल सकेगा। कांग्रेस ने 2004 के अपने चुनाव घोषणा पत्र में भी ग्रामीण और शहरी इलाकों में गरीब परिवारों के कम से कम एक सदस्य को सौ दिनों का सुनिश्चित रोजगार मुहैया कराने का वायदा कर रखा है। हालांकि पिछले बजट में इसमें कुछ कमी लाकर इसे कुछ जिलों तक सीमित कर दिया गया। ऐसी उम्मीद है कि विधेयक आने से पहले और उसके कानून बनने तक इसे और हल्का कर दिया जाएगा।

श्रमिक रोजगार गारंटी स्कीम के तहत जैसा कि कई मामलों में देखा गया है, तभी काम पर जाना पसंद करते हैं जब वहां करने को काम बहुत कम हो और मजदूरी बाबुओं और मजदूरों के बीच 50-50 फीसदी बंट जानी हो। अगर कोई हाड़ तोड़ काम होता है, मसलन खुदाई तो श्रमिक अक्सर खुदाई करने वाली मशीनों की मांग करते हैं।

रोजगार गारंटी स्कीम पर अमल का महाराष्ट्र का नमूना प्रस्तावित कानून का माडल है। महाराष्ट्र के तजुर्बे पर चर्चा करने वाले शायद ही उत्साहित हों। स्कीम ने कुछ ऊबड़ खाबड़ सड़कों के सिवा और कोई परिसंपत्ति पैदा नहीं की। जब इस स्कीम के तहत बागबानी करने वाले परिवारों को भी लाने की बात की गई तो सरकार फौरन मान गई। श्रमिक रोजगार गारंटी स्कीम के तहत जैसा कि कई मामलों में देखा गया है, तभी काम पर जाना पसंद करते हैं जब वहां करने को काम बहुत कम हो और मजदूरी बाबुओं और मजदूरों के बीच 50-50 फीसदी बंट जानी हो। अगर कोई हाड़ तोड़ काम होता है, मसलन खुदाई तो श्रमिक अक्सर खुदाई करने वाली मशीनों की मांग करते हैं। यहां तक कि वे अपने हिस्से की मजदूरी में से किराये पर मशीन लाने की पेशकश करते हैं।

सिर्फ इतना ही नहीं। रोजगार गारंटी स्कीम के तहत काम मिलने की संभावना से श्रमिक फिर खेती बाड़ी के सामान्य कार्य भी करने से कतराने लगते हैं। इस तरह खेती के क्षेत्र में श्रमिकों की भारी किल्लत हो जाती है। महाराष्ट्र माडल की रोजगार गारंटी स्कीम में एक सुधार तो अवश्य हुआ है कि रोजगार गारंटी स्कीम के तहत काम मांगने वाले को काम मिल जाता है बशर्ते उसकी खपत खेती बाड़ी के काम में न हो पाई हो। इस तरह अगर देखा जाए तो रोजगार गारंटी स्कीम को राष्ट्रव्यापी पैमाने पर लागू करने से कृषि का क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित होगा। आरक्षण से स्थिति तभी सुधर सकती है जब कृषि को भी निजी क्षेत्र के तौर पर माना जाए। पर ऐसा होना शायद ही मुमकिन हो। किसानों को तो हर तरह से नुकसान उठाना पड़ेगा। सरकार का ध्यान अभी पूरी तरह पिछड़े वर्गों और बेरोजगार गरीबों की तरफ ही है। दरअसल यह इन्हीं के लिए विधेयक लाना चाहती है। इससे लक्ष्य हासिल भी हो सकता है और नहीं भी हासिल हो सकता है। ऐसा लगता है कि जो भी होगा उसकी मार अर्थव्यवस्था के सबसे उपजाऊ वर्ग अर्थात किसानों को ही सहनी पड़ेगी।

-कुमार अंबुज

उच्च वर्ग के गरीबों का भी खयाल रखें

भारतीय जनता पार्टी ने केंद्र सरकार के उच्च शिक्षण संस्थानों में अन्य पिछड़ा वर्ग को 27 प्रतिशत आरक्षण देने के प्रस्ताव को सही बताते हुए इसका समर्थन तो किया है लेकिन उच्च वर्ग के गरीबों के हितों का खयाल रखने की भी बात कही है।

पार्टी का मानना है कि आरक्षण को लागू करवाने को लेकर वर्तमान केंद्र सरकार ने जो तरीका अपनाया है वह गलत है। भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में पार्टी अध्यक्ष राजनाथ सिंह ने उच्च शिक्षण संस्थानों में अन्य पिछड़ी जातियों को आरक्षण दिए जाने का समर्थन किया था।

इस बारे में पार्टी प्रवक्ता रविशंकर प्रसाद का कहना था कि अभी इसे जिस तरह से लागू किया गया है वह साफ तौर पर वोटों की राजनीति करना है। दूसरा यह कि इसे समाज में विघटन पैदा करने के लिए किया गया है। ऐसे संवेदनशील मुद्दे को राजनीति नहीं, सामंजस्य के साथ लागू करना चाहिए।

पार्टी ने अन्य पिछड़ी जातियों के संपन्न लोगों के लिए भी साफ तौर पर कुछ न कहते हुए कहा था कि सरकार को ऐसे प्रयास करने चाहिए जिससे इसका लाभ पिछड़े वर्ग के उन लोगों तक पहुंच सके जिन्हें इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। उनका कहना था कि हम पिछड़े वर्ग को उच्च शिक्षण संस्थानों में 27 प्रतिशत आरक्षण दिए जाने के पक्ष में हैं पर उन लोगों के हितों को भी ध्यान में रखना होगा जो उच्च वर्ग के हैं, पर गरीब हैं। भाजपा ने आरक्षण के साथ मेरिट को भी ध्यान में रखने की बात सरकार को याद दिलाई है। ❑

- अमेरिका में नौकरी और शिक्षा दोनों में काले वर्ण के लोगों को आरक्षण मिला है जबकि हमारे देश की आबादी में 50-55 फीसदी एससी-एसटी,ओबीसी हैं, संसद के 560 सदस्यों में से 350 एससी-एसटी,ओबीसी हैं, फिर भी आरक्षण पर यहां एक राय नहीं बन सकी है।
- अमेरिका में रंगभेद और आरक्षण की मांग पर १९३१ में एक अश्वेत कवि-लेखक, लंगसटन हयुज्स ने एक छोटी सी कविता में अपनी और अपने जैसे काले लोगों की व्यथा व्यक्त की है, जिसका भावार्थ इस तरह है-

मैं एक घर ढूंढ़ रहा हूं
इस दुनिया में,

जिस पर सफेद छाया
नहीं गिरेगी कभी..

मगर कोई घर ऐसा नहीं है
मेरे काले भाई
कोई नहीं. . .

मंडल से अब तक आरक्षण एक पुनरावलोकन

मंडल आयोग का गठन 1979 में मोरारजी देसाई की जनता पार्टी की सरकार ने सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े लोगों की पहचान के लिए किया था। इसे सांसद बिंदेश्वरी प्रसाद मंडल की अध्यक्षता में गठित किया गया था। मंडल कमीशन का उद्देश्य जातिगत भेदभाव को दूर करने के लिए सीटों के आरक्षण और कोटा प्रणाली पर विचार करना था। 1980 में मंडल आयोग ने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ा वर्ग को दिए जाने वाले आरक्षण को 27 फीसदी से बढ़ाकर 49.5 फीसदी करने की सिफारिश की। 1980 में आई मंडल कमीशन की रिपोर्ट से विवाद उत्पन्न हो गया और 1990 में इसे लागू करने के चलते ही तत्कालीन प्रधानमंत्री वीपी सिंह को इस्तीफा देना पड़ा।

1950 में भारतीय संविधान के निर्माण के बाद अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के लिए शिक्षा और सिविल सर्विसेज के क्षेत्र में 15 प्रतिशत सीटें आरक्षित की गईं। अनुसूचित जन जाति के उम्मीदवारों के लिए 7.5 प्रतिशत सीटों का आरक्षण किया गया। 1963 में सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी कि देश में आरक्षण 50 फीसदी से ज्यादा नहीं होना चाहिए। 1978 में मोरारजी देसाई सरकार ने मंडल आयोग बनाने की योजना बनाई थी। इसकी आधिकारिक घोषणा एक जनवरी 1979 को तत्कालीन राष्ट्रपति द्वारा की गई।

मंडल आयोग ने वांछित आंकड़े व साक्ष्य एकत्र करने के लिए कई तरीकों व तकनीकों का सहारा लिया। आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग की पहचान के लिए 11 मानदंड बनाए। सामाजिक रूप से इसके लिए ऐसी जातियों का चुनाव किया गया, जो पिछड़ी हुई मानी जाती थीं। इनमें वह जातियां शामिल की गईं, जिनके जीवन यापन का आधार मजदूरी थी। इसके लिए ऐसी जातियों और वर्गों को चुना गया, जिनकी ग्रामीण क्षेत्रों में 25 प्रतिशत महिलाओं और 10 प्रतिशत पुरुषों का विवाह 17 साल से कम उम्र में हो जाता था। ऐसी जातियां, जिनमें 25 फीसदी से कम नौकरी करती थीं, उन्हें भी इस वर्ग में रखा गया।

शैक्षिक आधार पर उन जातियों को पिछड़ा हुआ माना गया जिनमें 5-15 साल के आयु वर्ग के 25 फीसदी बच्चे स्कूल न जाते हों। बीच में ही पढ़ाई छोड़ने वाले 5-15 साल के बच्चों की संख्या राज्य के औसत से 25 फीसदी अधिक हो और जिसमें आठवीं कक्षा तक पढ़े लोगों का अनुपात राज्य के औसत से कम से कम 25 फीसदी कम हो। आर्थिक आधार पर ऐसी जातियों या वर्गों को इसमें रखा गया, जिनकी पारिवारिक संपत्ति का औसत मूल्य राज्य के औसत से कम से कम 25 फीसदी

कम हो। कच्चे मकानों में रहने वाले परिवारों की संख्या राज्य के औसत से कम से कम 25 फीसदी अधिक हो। उन जातियों को भी इसमें शामिल किया गया, जो ऐसे क्षेत्रों में रहती थीं, जहां 50 प्रतिशत लोगों को एक किलोमीटर या इससे भी अधिक दूर से पेयजल लाना पड़ता था।

मंडल आयोग ने अनुमान लगाया कि देश की कुल आबादी का 54 प्रतिशत, जो 3,743 विभिन्न जातियों और संप्रदायों से संबंध रखती हैं, पिछड़ी हुई हैं। आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों की संख्या जानने के लिए 1931 की जनसंख्या के आंकड़ों का प्रयोग किया। हिंदुओं और गैर हिंदुओं में अन्य पिछड़ा वर्ग की संख्या 52 फीसदी उभर कर सामने आई।

मंडल आयोग की रिपोर्ट दिसंबर 1980 में सरकार को सौंपी गई। इसके अंतर्गत सरकारी नौकरियों में अन्य पिछड़ा वर्ग को 27 फीसदी आरक्षण देने की सिफारिश की गई। हिंदुओं व गैर हिंदुओं में ओबीसी की आबादी 52 फीसदी मानी गई, फिर भी सुप्रीम कोर्ट के आदेश के चलते केवल 27 फीसदी आरक्षण देने की सिफारिश की गई। सुप्रीम कोर्ट के आदेश के चलते केवल 27 फीसदी आरक्षण देने की सिफारिश की गई। सुप्रीम कोर्ट ने अपने आदेश में कहा था कि आरक्षण 50 फीसदी से अधिक न दिया जाए। ओबीसी के जो उम्मीदवार अपनी योग्यता से सरकारी नौकरियों में चुने जाते हैं, वह 27 फीसदी के आरक्षण में शामिल नहीं होंगे।

केंद्र और राज्य सरकार के अधीन आने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों और बैंकों को ओबीसी को 27 फीसदी आरक्षण देने की सिफारिश की गई। मंडल आयोग ने बड़ी संख्या में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जातियों को अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के रूप में अपनी रिपोर्ट में शामिल किया। आयोग के रिपोर्ट सौंपने के करीब एक दशक बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री वीपी सिंह ने इसको लागू करने का प्रयास किया।

इसकी काफी तीखी प्रतिक्रिया हुई और देश भर में धरना-प्रदर्शन हुए। दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र राजीव गोस्वामी ने मंडल कमीशन की सिफारिशों के विरोध में आत्मदाह का प्रयास किया। राजीव गोस्वामी के कदम से प्रेरित होकर कई अन्य छात्रों ने भी आत्मदाह का घातक कदम उठाया। इससे भारत में पिछड़ी जातियों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण की नीति के चलते उच्च जातियों के लोगों के लिए सरकारी नौकरियों के अवसर घटने लगे जिससे उन्होंने उन देशों की ओर रुख किया, जहां भारत की तुलना में नौकरियों के अपेक्षाकृत समान अवसर हों।

आरक्षण के पक्ष में तर्क

1-आरक्षण प्रतिनिधित्व पर आधारित है। यदि किसी जाति या वर्ग की शिक्षा और सरकारी नौकरियों में भागीदारी उसकी जनसंख्या से बहुत कम है तो उसे आरक्षण

मिलना चाहिए।

2-सरकार को देश भर में केंद्रीय विद्यालय और नवोदय विद्यालय खोलने चाहिए ताकि पूरे देश के छात्रों को उच्च स्तर की शिक्षा मिले। तब तक आरक्षण की नीति जारी रखनी चाहिए।

3-अगर दलितों, मुसलमानों और पिछड़े वर्ग को निजी क्षेत्र में आरक्षण नहीं दिया जा सकता तो उनको अन्य लाभ मिलने चाहिए।

4-सरकार को मंदिर के पुजारी, शंकराचार्य के पद के लिए ब्राह्मणों के 100 फीसदी आरक्षण को खत्म करना चाहिए। यह कोई नियम नहीं है कि मंदिर का पुजारी या शंकराचार्य कोई ब्राह्मण ही बने। मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के समर्थकों का मानना है कि देश में एकता तभी स्थापित हो सकती है, जब सभी जातियों को न्याय मिले और किसी को अन्याय का सामना न करना पड़े। मंडल आयोग के समर्थक मानते हैं कि स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस की सरकार ने केवल ब्राह्मणों व अल्पसंख्यकों के हितों की पूर्ति के लिए कार्य किया। मूलभूत सुविधाओं से वंचित पिछड़ी जातियों को ऊपर उठाने और उन्हें दूसरी जातियों के समकक्ष आरक्षण आवश्यक है।

यहां इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि आज के समय में आरक्षण का स्वरूप वह नहीं है, जिसे देश में रहने वाले दलित चाहते थे। साइमन कमीशन बाबा साहब भीमराव अंबेडकर की मांग पर दलितों के लिए अलग चुनाव कराने पर सहमत हो गया था। इसके विरोध में महात्मा गांधी ने आमरण अनशन की शुरुआत की थी। उनका मानना था कि इससे निचली जातियों और उच्च श्रेणी के हिंदुओं के बीच की खाई और गहरी होगी।

पूना पैक्ट के तहत डा. अंबेडकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण पर सहमत हो गए थे पर उनका मानना था कि आरक्षण केवल एक तय समय सीमा (स्वतंत्रता प्राप्ति के दस वर्ष बाद तक) के लिए होना चाहिए।

आरक्षण के विरोधियों का मानना है कि जाति के आधार पर आरक्षण देने से समाज में जातीय आधार पर भेदभाव फैलेगा, जो समानता के सिद्धांत के खिलाफ है। इसके परिणामस्वरूप मुसलमानों और ईसाइयों जैसे अल्पसंख्यक वर्ग को भी आरक्षण देना होगा, जो धर्मनिरपेक्षता के विचार के खिलाफ होगा और इससे धार्मिक आधार पर भी भेदभाव फैलेगा। निचली जातियों के सुविधा संपन्न लोग (अमीर लोग) आरक्षित सीटों का लाभ उठाएंगे। इससे समाज के सबसे दलित और शोषित वर्ग तक आरक्षण का लाभ पहुंचाने का सपना सपना ही बनकर रह जाएगा। राजनैतिक दल यह अच्छी तरह से जानते हैं कि आरक्षण से समाज के निर्धन और पिछड़े वर्ग का कोई भला होने वाला नहीं है, लेकिन वह अपने वोट बैंक को बनाए रखने के लिए आरक्षण की व्यवस्था खत्म करने के पक्षधर नहीं हैं।

बाबा साहब भीमराव अंबेडकर भी केवल स्वतंत्रता प्राप्ति के दस वर्ष बाद तक

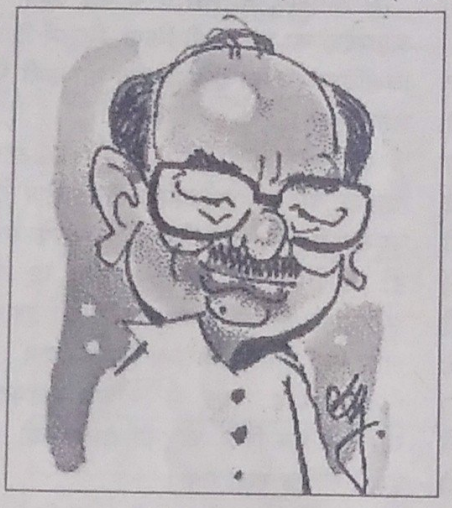

ही आरक्षण का लाभ चाहते थे। कई अध्ययनों से यह साबित होता है कि अन्य पिछड़ा वर्ग सामान्य श्रेणी के लोगों की तुलना में खर्च करने के मामले में पीछे नहीं है। यदि उच्च शिक्षण संस्थाओं में पिछड़ों को आरक्षण दिया जाता है तो इससे शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होगी।

पिछड़ी जातियों के उम्मीदवारों को आरक्षण देने के लिए संस्थान की गुणवत्ता व श्रेष्ठता से समझौता करना होगा। समाज के दलित और शोषित वर्गों को प्राइमरी शिक्षा देने की दिशा में कोई प्रयास नहीं किए जा रहे हैं। इसलिए उच्च शिक्षा में पिछड़ों को आरक्षण का लाभ देने की कोई जरूरत नहीं है। भारत के सरकारी स्कूल विकसित देशों के पब्लिक स्कूलों से मीलों पीछे हैं। भारत में साक्षरता की दर भी काफी कम है। यह अलग बात है कि फिलहाल इसमें कुछ वृद्धि हुई है।

आलोचकों का कहना है कि जब तक प्राइमरी व माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा का स्तर सुधारने के पर्याप्त प्रयास नहीं किए जाते, तब तक उच्च शिक्षण संस्थाओं और सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था करने के कोई मायने नहीं हैं। सरकार और राजनैतिक दल वोट बैंक की राजनीति के चलते लोगों को जातियों के आधार पर बांटने का कुचक्र रच रहे हैं। यह भी किसी को पता नहीं है कि भारत में आरक्षण की व्यवस्था कितने समय तक चलेगी। अभी तो देखने से यह लगता है कि आरक्षण हमारे देश में अनिश्चित काल तक रहेगा।

आरक्षण की व्यवस्था से शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता का हनन होगा। ऊंची जाति का हर व्यक्ति अमीर नहीं होता और निचली जाति का हर व्यक्ति निर्धन नहीं होता। भारतीय समाज में इससे भारी असंतोष फैल रहा है। जाति के आधार पर कोटा प्रणाली निर्धारित होने से देश के मेधावी छात्रों को नुकसान होगा। प्रतिभाशाली छात्र परीक्षा में ज्यादा अंक लाकर भी अच्छे शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने के लाभ से वंचित रह जाएंगे। दूसरी ओर आरक्षित वर्ग का छात्र कम अंक लाकर भी उत्कृष्ट शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पा जाएगा और योग्यता को मुंह चिढ़ाएगा।

सरकार की इस नीति से सामान्य श्रेणी के प्रतिभाशाली व मेधावी छात्र देश के विश्वविद्यालयों को तिलांजलि देकर विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेंगे। इससे भारतीय शिक्षा और अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। सरकार की इस नीति से बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत में निवेश नहीं करेंगी, जिससे भारत में विदेशी निवेश का अकाल पड़ जाएगा। इससे देश की अर्थव्यवस्था को काफी नुकसान पहुंचेगा। विकास से लाभान्वित न हुए देश के लोगों की स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक कदम तत्काल उठाए जाने चाहिए।

अनुसूचित जातियों के लिए 55 साल के आरक्षण के बाद भी कोई सुधार नहीं (की स्थिति में) आया है। यदि आरक्षित वर्गों को शिक्षा के क्षेत्र में इतनी सुविधाएं प्रदान करने के बाद भी स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है और सरकारी नौकरियों में इस वर्ग के लोगों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं है तो देश की शिक्षा प्रणाली को हमें दुरुस्त और कारगर बनाना होगा। जातिगत आधार पर कुछ लोगों को आरक्षण की सुविधा देना समाज के अन्य लोगों के साथ अन्याय है। इससे सबसे ज्यादा नुकसान योग्य और

प्रतिभाशाली लोगों ही उठाना पड़ा है। यदि अयोग्य लोग डाक्टर या इंजीनियर बन गए तो इससे उत्पन्न होने वाली अराजकता की स्थिति का अंदाजा लगाना ज्यादा मुश्किल नहीं है।

क्या हमारे पास अभी भी ओबीसी की आबादी के अनुपात का पता लगाने का कोई तरीका है। मंडल आयोग की रिपोर्ट के अनुसार यह 52 फीसदी है। नेशनल सैंपल सर्वे के अनुसार देश की आबादी का केवल 36 फीसदी हिस्सा ही ओबीसी है। अगर अन्य पिछड़ा वर्ग की श्रेणी में मुसलिम आबादी को छोड़ दें तो यह आंकड़ा 32 फीसदी तक पहुंच जाएगा। 1988 में एनएफएचएस के सर्वे में गैर मुसलमान ओबीसी की संख्या देश की कुल आबादी का 29.8 फीसदी है।

एनएएसओ क आंकड़ों के अनुसार कालेजों की 23.5 फीसदी सीट पर पहले ही ओबीसी वर्ग का कब्जा है। अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन जाति को अलग कानूनी दर्जा देने से जातिगत भेदभाव बढ़ेगा और राष्ट्रीय एकता की कीमत पर जातियों की प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। सरकार की आरक्षण नीति से केवल क्रीमीलेयर को ही फायदा होगा। इससे केवल छोटे से समूह के पढ़े लिखे दलितों, आदिवासियों और ओबीसी को लाभ पहुंचेगा। इससे गरीबी में जिंदगी गुजार रहे लोगों को पिछड़ेपन, अभाव और अज्ञानता के अंधेरे से बिल्कुल नहीं निकाला जा सकता है।

मंडल आयोग का इतिहास

1-मंडल आयोग को द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग भी कहा जाता है।

2-आयोग की अध्यक्षता करने वाले बीपी मंडल के नाम पर आयोग का नामकरण किया गया।

3-मंडल आयोग का गठन 1978 में मोरारजी देसाई की सरकार ने किया था। इसका उद्देश्य जातीय भेदभाव को दूर करना था।

4-मंडल आयोग ने 1980 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी। आयोग ने सरकारी नौकरियों के केंद्र सरकार के सार्वजनिक उपक्रमों में 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की। आयोग ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सभी शिक्षण संस्थाओं में अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की।

5-अनुसूचित जाति और जनजाति के उम्मीदवारों के लिए पहले से ही 22.5 फीसदी सीटें आरक्षित करने का प्रावधान था।

6-अगस्त 1990 में तत्कालीन प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिशों के क्रियान्वयन का आश्वासन दिया।

7-देश भर के सामान्य श्रेणी के छात्रों ने इसका विरोध किया, जिसके चलते वीपी सिंह को प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा देना पड़ा।

8-आरक्षण के विरोध में कई छात्रों ने आत्मदाह का प्रयास भी किया, जिसमें दिल्ली विश्वविद्यालय का छात्र राजीव गोस्वामी भी शामिल था।

9-1993 में सुप्रीम कोर्ट ने अन्य पिछड़ा वर्ग को 27 फीसदी आरक्षण देने पर अपनी मुहर लगा दी। लेकिन इसके साथ ही ओबीसी वर्ग से जो व्यक्ति या वर्ग सुविधा व साधन संपन्न थे, उनको इसका लाभ नहीं देने का फैसला किया गया।

10- एक लाख से अधिक आमदनी वाले अधिकारियों के नौनिहालों को भी इससे वंचित रखा गया।

11-मंडल कमीशन की सिफारिशों को स्वीकार करने के बाद सितंबर 1993 में आरक्षण तत्काल प्रभाव से लागू हो गया।

12- अगस्त 2005 में सुप्रीम कोर्ट ने निजी कालेजों में जाति आधारित आरक्षण देने पर रोक लगा दी।

13- दिसंबर 2005 में संसद ने 104वां संविधान संशोधन विधेयक पारित कर सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को पलट दिया।

14- नए संशोधन विधेयक से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग को निजी शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण देने की अनुमति दे दी गई।

15- आईआईटी, आईआईएम सहित उच्च शिक्षण संस्थाओं में ओबीसी को 27 फीसदी आरक्षण देने के प्रस्ताव से देश भर में एक बार फिर विरोध की चिनगारी फैल गई।

-बेबी मिश्रा

एक सच यह भी

इस बार की संघ लोकसेवा आयोग की मेरिट लिस्ट में चौथे नंबर पर पिछड़े वर्ग के उम्मीदवार जे. गणेशन का नाम है। ये अलग बात है कि मेरिट लिस्ट में ऊंचे पायदान पर होने के बावजूद गणेशन का नाम सामान्य वर्ग की मेरिट लिस्ट के बजाय पिछड़ों की सूची में है। इस बार के 425 उम्मीदवारों की कुल सूची में अगर रैंक के आधार पर टॉप के आधे नाम छांटे जाएं तो उनमें 40 उम्मीदवार अनुसूचित जाति, जनजाति या अन्य पिछड़े वर्ग के हैं। यानि आरक्षण कोटे के उम्मीदवार अपने लिए तय 49.5 प्रतिशत आरक्षण की सीमा तोड़कर आगे बढ़ रहे हैं। पिछड़ा वर्ग और सामान्य वर्ग की मेरिट लिस्ट में अंकों का फासला भी लगातार कम होता जा रहा है। दो साल पहले सामान्य वर्ग की मेरिट लिस्ट में पहला पिछड़ा उम्मीदवार 31वें नंबर पर था और और इस साल चौथे नंबर पर है। यह सिलसिला साल दर साल बढ़ रहा है। इसके जारी रहने का मतलब यह भी है कि आने वाले दिनों में सामान्य वर्ग और आरक्षित वर्ग के बीच अंगों का फर्क लगभग खत्म हो जाएगा। ऐसे में क्या यह वाजिब नहीं है कि वंचित रह गई जातियां शिक्षा की लड़ाई खुद लड़ें। यह लड़ाई उन्हें अपने इस आत्म विश्वास के साथ लड़नी चाहिए कि उनमें योग्यता और मेरिट की कमी नहीं है।

सूचना

कलरव की योजना में यह भी शामिल है कि हर अंक में किसी तात्कालिक खास विदेशी मामले पर तथ्यपरक व विश्लेषणात्मक रिपोर्ट, एक कहानी, कुछ कविताएं, कार्यक्रमों की रिपोर्ट, चित्र और पेंटिंग्स आदि (बच्चों द्वारा निर्मित भी) का प्रकाशन भी किया जाएगा। अगर आप को लगता है कि आपकी कोई सामग्री कलरव में प्रकाशित की जा सकती है तो हमें भेज सकते हैं। सामग्री मूल होनी चाहिए और समय के भीतर मिल जानी चाहिए।

संपादक

कुछ महत्वपूर्ण जानकारियां

● आरक्षण पर बहस तेज़ हुई 1991 में मंडल कमीशन की रिपोर्ट आने के बाद। मंडल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में शिक्षा और सरकारी नौकरियों में आरक्षण देने की बात कही, जिस पर सार्वजनिक तौर पर बहस होने लगी। उसके बाद आरक्षण के विरोध की आवाज़ें भी उठने लगीं। जबकि आरक्षण से जिन्हें लाभ मिलना था वो इस बहस में बहुत कम शामिल हुए, कुछेक किताबों, अखबारों में कुछ एक लेख के अलावा उनकी ओर से ज़्यादा कुछ नहीं कहा गया। जबकि उन लोगों की आवाजें ज़्यादा सुनायी दीं जो आरक्षण के खिलाफ थे, जो उच्चजाति से संबंध रखते थे और शिक्षा, नौकरी जैसे क्षेत्र में अपने एकाधिकार का फायदा उठा रहे थे। जबकिसामाजिक संचरना में पिछड़ी-अनुसूचित जाति के लोग शिक्षा, नौकरी, व्यापार, आर्थिकक्षेत्र में गिनती से बाहत थे।

● आरक्षण या कोटा व्यवस्था की शुरुआत सबसे पहले माल्टा से हुई जबकि भारत में इस पर चर्चा की जा रही थी। यूगोस्लाविया में 5 राष्ट्रीय और 6 भाषायी समूह हैं, वहां शक्ति का संतुलन बनाए रखने केलिए एक तरह की कोटा व्यवस्था अपनायी गई है ताकि राष्ट्र में एकता बनी रहे।

मंडल आयोग की रिपोर्ट ये भी कहती है कि अमेरिका ने भी, चाहे वो माने या न माने, आरक्षण के मसले पर भारत के प्रयोग और एक समान व्यहवार का तरीका अपनाया जो कि 1960 में पहली बार पेश किया गया था, जिसके तहत अमेरिकन-अफ्रीकन, अमेरिकी और दूसरे अल्पसंख्यकों को कोटा दिया गया।

● आरक्षण व्यवस्था के प्रथम दस्तावेज़ दक्षिण भारत के मैसूर और बड़ौदा-कोल्हापुर में मिलते हैं, जहां पिछड़ेवर्गों और अल्पसंख्यकों को आगे बढ़ाने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई।

● महात्मा गांधी ने हिंदूवाद में जातिगत भेदभाव के खतरे को भांप लिया था, कमज़ोर वर्गों को उनका अधिकार दिलाने के लिए उन्होंने मौत आने तक आमरण अनशन की धमकी दी, उनके दबाव की वजह से हिंदू नेताओं और कमज़ोर वर्गों के नेताओं की ओर से एक समझौता हुआ ताकि महात्मा गांधी की ज़िंदगी को बचाया जा सके। ये समझौता पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है। जिसके तहत निम्न व्यवस्था की गई थी।

१) प्रादेशिक विधायी क्षेत्रों में आम चुनावों में कमज़ोर वर्गों केलिए कुछ सीटें आरक्षित होंगी

तालिका	
मद्रास	30
बॉम्बे साथ में सिंध भी	15
पंजाब	8
बिहार और उड़ीसा	18
केंद्रीय प्रदेश	20
असम	7
बंगाल	30
उत्तर प्रदेश	20
कुल =	148

● उत्तर प्रदेश सरकार ने प्राइमरी अध्यापकों में महिलाओं को 50 फीसदी आरक्षण दिया है, जिस पर सुप्रीमकोर्ट ने भी अपनी सहमति जतायी है।(आर्टिकल 15(1))

● आरक्षण का मुद्दा सामाजिक सुदार का मुद्दा होने की जगह राजनैतिक मुद्दा बन गया है। आरक्षण देकर पिछड़े वर्ग को ऊंची जाति में शामिल नहीं किया जा सकता, बल्कि ज़रूरत उन्हें आर्थिकतौर पर मज़बूत करने की है।

● अमेरिका में भी गोरे और काले के बीच नस्लभेद ने उग्र रुप लिया। वहां की सरकार ने कैबिनेट में कानून पास किया कि वे सभी तरह की नौकरियों में काले वर्ण के लोगों का पक्ष लेंगे। कोई भी कंपनी जो अपने उत्पाद के लिए बाहरी स्रोत की पड़ताल करेगी उन्हें पहले नीग्रो कंपनी में जाना होगा यानी ऐसी कंपनी जिसका मालिक काले वर्ण का व्यक्ति हो।

व्यवस्था का असर हुआ और अब अमेरिका में 25 ऐसे बैंक हैं जिनके मालिक अमेरिकी हैं। जबकि हमारे देश में बमुश्किल एक भी ऐसा दलित मिलेगा जिसका अपना सार्वजनिक क्षेत्र में कोई व्यवसाय हो या जिसकी सालान कमाई एक करोड़ के पास पहुंचती हो। हम बमुश्किल एक ऐसे दलित का नाम ढूंढ़ पाएंगे (कुछ विवादास्पद राजनैतिक हस्तियों को छोड़ और जब देश की कुल आबादी में दलित क़रीब 21 करोड़ हैं) जिसकी कुल संपति त एक बिलियन हो। जाहिर है कि दलित व्यापार और व्यवसाय में बहुत पीछे छूट गए हैं। □

● अगर उस विद्यार्थी की नज़र से देखें जो अभी दसवीं-12वीं की पढ़ाई कर रहे हैं और जिन्हें भविष्य में आरक्षण से मुक़बला करना है। उन्हें डर है कि आरक्षण की वजह से उनके साथ ज्यादती न हो जाए। जो पिछड़ों को आगे बढ़ाने के ख़िलाफ नहीं है लेकिन उसके एवज में अपनी सीट नहीं दे सकते। क्योंकि ये उनके भविष्य का सवाल भी है। आरक्षण के विरोध की आंधी उठी तो प्रदर्शनकारियों में एक बड़ी संख्या उन लोगों की थी जो ए. एसटी-ओबीसी के साथ पढ़ाई करने या उनके उत्थान के ख़िलाफ नहीं थे, वे उनके साथ पढ़ना चाहते थे लेकिन बदले में अपना हिस्सा नहीं छोड़ सक्ते थे। प्रदर्शनकारियों में बड़ी संख्या उन लोगों की थी जो आरक्षण का मतलब भी ठीक से नहीं जानते, उन्हें बस इतनी फिक्र थी कि हमारा भविष्य सुरक्षित रहे। दसवीं-12 वीं का विद्यार्थी भी यही चाहता है। वो इतना समझदार तो है जो ये कहता है कि हमारे देश में हर मामले का राजनीतिकरण कर दिया जाता है, आरक्षण का मुद्दा सामाजिक सुधार का मुद्दा है, राजनीति की बिसात पर खेली गई चाल नहीं। वो उसी फॉर्मूले की बात करता है जिसकी बात सरकार करती है, सब पढ़ें सब बढ़े। सबको पढ़ने का मौका दे दो, पढ़ने के लिए ज़रूरी सहायता दो ताकि योग्यता की कसौटी पर सभी एकसमान खरे उतरें फिर कम से कम नौकरियों में आरक्षण की ज़रूरत नहीं होगी। उनके नज़रिये से जरूरत आरक्षण की नहीं बल्कि एक समान व्यवहार करने वाले कदम उठाने की है। फिर आरक्षण जाति गत न होकर आर्थिक आधार पर होना चाहिए। ऊंची जाति के गरीब परिवारों की संख्या कम नहीं और पिछड़ी जाति के संपन्न परिवार भी हैं। □

कौन डरता है महिलाओं को आरक्षण देने से ?

यह अपने आप में कितनी विडंबना पूर्ण स्थिति है कि जब राजनीति पार्टियों के अपने स्वार्थ होते हैं तो वे सारे मतभेद भूलकर एक हो जाते हैं और बिना एक पल गंवाए संविधान संशोधित कर देते हैं। उन्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जनता का क्या हाल हो रहा है। ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण मिल जाएंगे। अभी हाल ही में लाभ के पद मामले में बिना किसी मतभेद के सभी पार्टियों ने ऐसी व्यवस्था बना ली कि कोई इसके दायरे में आ ही नहीं पाया और वे सभी सम्मानित सदस्य इस आरोप से मुक्त हो गए जो लाभ के दो पदों पर विराजमान हैं।

सांसदों व विधायकों का वेतन और भत्ता बढ़ाने के सवाल पर क्या कभी यह सुनने को मिला है कि किसी पार्टी ने विरोध किया हो। इस सवाल पर जिस एक पार्टी के कुछ सदस्यों ने विरोध किया भी वे संसद व विधानसभाओं में चुप रहे, हां बाहर जरूर उन्होंने विरोध में बयान दिए। लेकिन यही स्थिति महिला आरक्षण के सवाल पर कभी दिखाई नहीं दी। इसे क्या समझा जाए कि जिस मुद्दे को सभी पार्टियां बहुत जोर-शोर से उठाती रही हों, जो मुद्दा सभी पार्टियों के चुनाव घोषणा पत्रों में प्रमुखता से रखा जाता हो वह संसद में किनारे कैसे कर दिया जाता है। एक नहीं, कई सरकारों के आने-जाने के बावजूद महिला आरक्षण का सवाल वहीं का वहीं रह जाना अगर किसी के मन में यह संदेह पैदा करता है कि कोई पार्टी या सरकार चाहती ही नहीं कि महिला आरक्षण लागू हो तो इसमें गलती क्या है।

इसके साथ ही एक सवाल यह भी बहुत महत्वपूर्ण है कि आखिर वे कौन से कारण हैं कि जो पार्टियां अपने को आरक्षण का सबसे बड़ा पैरोकार बताते नहीं थकतीं वही और उनके नेतागण ही महिला आरक्षण के सवाल पर विरोध में कैसे खड़े हो जाते हैं। जब भी इस सवाल पर कोई पहल शुरू की जाती है (भले ही बे मन से की जाती हो) आरक्षण समर्थक पार्टियों और उनके नेताओं द्वारा विरोध की बातें की जाने लगती हैं। कारण भले ही कुछ भी हो लेकिन लगता है इसे ही बहाना बनाकर सरकारें और सत्ताधारी पार्टियां मौका तलाश लेती हैं और इससे संबंधित विधेयक फिर फाइलों में वापस चला जाता है। इस विधेयक के साथ लगातार हो रहा इस तरह का व्यवहार इस आशंका को बलवती ही करता जा रहा है कि महिला आरक्षण का सवाल मात्र अच्छा नारा बन कर रह जाएगा। यद्यपि कुछ महिला संगठनों और कई महिला नेताओं की ओर से इसे लागू करवाने के लिए समय-समय पर चलाए जाने वाले आंदोलनों आदि से यह उम्मीद अभी भी बाकी है कि शायद देर-सबेर इस पर कुछ सकारात्मक परिणाम सामने आए लेकिन

फिलहाल ऐसा कुछ होता दिखाई नहीं दे रहा है क्योंकि पिछले संसद सत्र में भी इस दिशा में कोई ठोस पहल नहीं दिखाई दी।

संसद और विधानसभाओं में महिलाओं को 33 फीसदी आरक्षण देने की बात 1996 में की गई थी। तब से लेकर अब तक दस साल बीत चुके हैं। करीब सारी राजनीतिक पार्टियां किसी न किसी रूप में सत्ता में आ चुकी हैं लेकिन महिला आरक्षण का मामला वहीं का वहीं रह गया है। तकरीबन सभी ने इससे संबंधित विधेयक सदन में रखा लेकिन इसके आगे बात कभी नहीं बढ़ सकी बल्कि और ज्यादा उलझकर रह गई। तब संयुक्त मोर्चा सरकार के प्रधानमंत्री एच डी देवेगौड़ा ने इससे संबंधित विधेयक सदन में रखा था लेकिन उस पर उस समय इसलिए संसद में कोई बात नहीं हो सकी कि कई सामाजिक न्याय के पैरोकार नेताओं ने इसका जमकर विरोध किया। बाद में प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल ने भी इसको लेकर बातचीत चलाई और इसे पारित करवाने का प्रयास किया पर आम सहमति न बन पाने के बहाने इसे फिर आगे के लिए टाल दिया गया। अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने वायदे किए पर उनकी सरकार भी सुषमा स्वराज के तमाम प्रयासों के बावजूद सफल नहीं हो सकी। अब यह सवाल एक अलग बहस का मुद्दा बन जाएगा कि आखिर कौन-कौन से सवाल उठाए जा रहे थे जिनके बहाने इसे टाला जाता रहा लेकिन यह जरूर कहा जा सकता है कि वे कोई ऐसे सवाल नहीं थे जिनका हल न खोजा जा सके। अगर ईमानदारी से इस पर राजनीतिक पार्टियों की ओर से विचार-विमर्श किया जाता तो जरूर कोई न कोई रास्ता निकल आता पर ऐसा नहीं किया गया और सिर्फ अंड़ंगे लगाकर छोड़ दिया गया। अगर इसी अनुभव के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालना चाहे तो उसे यह लग सकता है कि भविष्य में भी यह सवाल बने रहेंगे और इनका कोई हल नहीं निकल पाएगा। अगर ऐसा रहा तो महिला आरक्षण का सवाल लंबे समय तक राजनीति का शिकार बना रहेगा।

एक समय राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष रही मोहिनी गिरी ने कहा था कि इस विधेयक से पुरुषों में भय की भावना घर कर गई है। उनके अनुसार एक पुरुष सांसद की टिप्पणी थी कि मैडम क्यों हमारी सीट किसी महिला देने की योजना बनाई जा रही है। हमारा सवाल है कि इसे पुरुषों से जोड़ कर क्यों देखा जा रहा है। आखिर पंचायतों में महिलाओं को स्थान मिल गया है तो संसद और विधानसभाओं में देने में क्यों परेशानी हो रही है।

यह अपने आप में कितनी विडंबना पूर्ण स्थिति है कि देश की दो बड़ी राजनीतिक पार्टियां भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस महिला आरक्षण की समर्थक हैं, इसके बावजूद इससे संबंधित विधेयक अटका पड़ा है। अगर पिछली सरकारों में यह दोनों ही पार्टियां चाहतीं तो आसानी से विधेयक

को पारित कराया जा सकता था। लेकिन ऐसा नहीं किया गया। वामपंथी पार्टियों की सदस्य संख्या भी संसद में कोई कम नहीं है और वे भी महिला आरक्षण की समर्थक हैं, इसके बावजूद यह विधेयक क्यों अटका पड़ा है, यह किसी भी व्यक्ति के लिए समझ से परे हैं। इनके इस मामले पर एकजुट नहीं होने से ही राजनीतिज्ञों की ईमानदारी पर सवालिया निशान लग रहे हैं।

जहां तक समाजवादियों और आरक्षण समर्थकों का सवाल है, वे जरूर विभिन्न तरीके से इसमें अड़ंगे लगा रहे हैं पर उनकी संख्या ऐसी नहीं है जिससे इस विधेयक को रोका जाए। यह बात साफ होनी चाहिए कि इस विधेयक का सबसे ज्यादा विरोध करने वालों में मुलायम सिंह यादव, लालू प्रसाद यादव और शरद यादव आदि हैं। इतना ही नहीं, शिवसेना भी महिला आरक्षण के विरोध में खड़ी है। इस विसंगति को भी समझा जाना चाहिए कि जिस समय राष्ट्रीय जनता दल के अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव महिला आरक्षण विधेयक विरोध कर रहे थे, उसी समय उनकी पत्नी और बिहार की मुख्यमंत्री राबड़ी देवी इसका समर्थन कर रही थीं। भारतीय जनता पार्टी की वरिष्ठ नेता सुषमा स्वराज ने इसकी शिकायत जब राबड़ी देवी से की तो उन्होंने कहा कि अगर लालू प्रसाद यादव विरोध करेंगे तो उनका दाना-पानी बंद कर देंगे।

इस विधेयक को लेकर किस तरह राजनीति की गई और इसकी पूरी कोशिश की गई कि यह पास न होने पाए बल्कि अटका रहे, इसमें कांग्रेस और भाजपा के सदस्यों की भूमिका भी कोई कम नहीं रही है। एक समय कांग्रेस के सदस्य राजेश पायलट और भाजपा की उमा भारती ने सब कोटा की मांग उठाई थी। शायद इसी सब के मद्देनजर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता एबी वर्द्धन ने कभी कहा था कि जब तक सत्ताधारी पार्टियां कांग्रेस और भाजपा नहीं चाहेंगी तब तक यह विधेयक पारित नहीं हो सकता।

जहां तक सब कोटा का सवाल है, यह पूरी तरह उलझाने वाला है। इस सवाल को सुनियोजित तरीके से उठाया गया है ताकि इसके बहाने इस विधेयक को रोका जा सके और यह आसानी से पास न हो सके। इस साजिश को महिला सदस्यों और महिला आरक्षण के पैरोकारों को समझना चाहिए। इस तरह की लगातार कोशिशें की जा रही

कुछ तथ्य

■ महिला आरक्षण विधेयक को पहली बार 4 सितंबर 1996 को 81 वें संविधान संशोधन विधेयक के तौर पर संयुक्त मोर्चा (देवेगौड़ा के नेतृत्व वाली) सरकार ने संसद में पेश किया था।

■ बाद में इसे (अब दिवंगत) सांसद गीता मुखर्जी की अध्यक्षता वाली संयुक्त संसदीय कमेटी के हवाले कर दिया गया।

■ इस विधेयक को 26 जून 1998 को 12वीं लोकसभा में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गंठबंधन (अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली) सरकार ने 84वें संविधान संशोधन विधेयक के रूप में दोबारा पेश किया।

■ इसे 13वीं लोकसभा में 22 नवंबर 1999 को राजग (अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली) सरकार ने एक बार फिर पेश किया। वामपंथी पार्टियों और कांग्रेस ने लिखित तौर पर आश्वासन दिया कि अगर विधेयक पेश किया जाता है तो वे उसका समर्थन करेंगी। इसे सदन में 2002 में फिर और 2003 में दो बार पेश किया गया, पर लोकसभा में बहुमत होने के बावजूद राजग सरकार ने इसे पारित कराने का कोई प्रयास नहीं किया।

■ मार्च 2004 में डा. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में सत्तारूढ़ हुई संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार ने महिला आरक्षण विधेयक को पारित कराने के अपने इरादे की घोषणा की और उसे अपने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में शामिल कर लिया।

घोषणा की गई कि संप्रग सरकार विधानसभाओं और लोकसभा में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण सुनिश्चित कराने के लिए विधेयक पेश करेगी पर आज की तारीख तक संप्रग सरकार विधेयक को लोकसभा में पेश कर पाने में नाकाम रही।

कुछ सुझाव

■ राजनीतिक पार्टियों की उम्मीदवारों की लिस्ट में महिला उम्मीदवारों को एक तिहाई आरक्षण

■ इस तरह के प्रावधान करने से चुनाव की मौजूदा प्रणाली के चलते संसद और राज्यों की विधानसभाओं में जरूरी नहीं कि महिलाओं की तादाद बढ़ जाए क्योंकि महिला उम्मीदवारों को हारने वाली सीटों पर लड़ाया जा सकता है। यह सुझाव तभी कारगर हो सकता है जब समानुपातिक प्रतिनिधित्व वाली चुनाव प्रणाली अपनाई जाए और वह भी तब जब उम्मीदवारों की लिस्ट में महिला उम्मीदवारों के नाम पहले शामिल किए जाएं।

■ अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए अलग से आरक्षण

■ विधेयक से अनुसूचित जाति और जनजाति की महिलाएं खुद लाभान्वित हो जाएंगी क्योंकि जो एक तिहाई सीटें अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षित हैं, उन पर इस वर्ग की महिलाओं का कब्जा हो जाएगा। अभी अन्य पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है, इसलिए इन वर्ग की महिलाओं के लिए अलग से कोई आरक्षण नहीं है। इस बाबत राजनीतिक पार्टियां स्वतंत्र हैं कि जब लोकसभा में विधेयक पेश हो तो वे कोई भी संशोधन पेश करें और उस पर मतदान कराएं।

■ संसद में एक तिहाई सीटों का बढ़ाया जाना और उन्हें महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाना।

■ यह मुमकिन नहीं है क्योंकि संसद पहले ही एक प्रस्ताव पारित कर चुकी है जो सीटों को बढ़ाने की इजाजत नहीं देता। इसके अलावा संसदीय हलकों के परिसीमन का काम भी पूरा हो ही चुका है। सीटों को बढ़ाने से कई किस्म की व्यावहारिक समस्याएं पैदा हो जाएंगी और इस पर अनाप शनाप खर्च भी आएगा।

■ संसदीय हलकों की तादाद दोगुनी करना जिसमें एक तिहाई का प्रतिनिधित्व पुरुष और महिला साथ-साथ करें।

■ यह सरासर भेदभावपूर्ण है, चूंकि इसमें यह निहितार्थ छुपा है कि महिलाएं अपने बलबूते पर संसदीय हलके की नुमाइंदगी नहीं कर सकतीं इसलिए उन्हें पुरुषों के साथ इसकी हिस्सेदारी करनी चाहिए।

प्रस्तुति - संध्या

हैं और पुरुष सदस्यों की ओर से हर बार कोई न कोई नया अड़ंगा लगा दिया जाता है। अगर इस तरह के सवालों में उलझा गया तो मूल उद्देश्य के भटकने का खतरा उत्पन्न हो जाएगा। दरअसल पिछड़ा वर्ग के पुरुष सांसदों को यह खतरा दिखने लगा है कि अगर महिलाओं को 33 फीसदी आरक्षण प्रदान कर दिया गया तो उनका क्या होगा। पिछले करीब बीस सालों से सत्ता सुख भोग रहे ऐसे नेताओं का डरना स्वाभाविक है, इसीलिए वे तरह-तरह के सवाल उठा रहे हैं। इसका डर दिखाना कि पिछड़ों और गरीबों में महिलाएं अशिक्षित और कम पढ़ी-लिखी हैं, इस कारण उनका संसद व विधानसभाओं में पहुंचना आसान नहीं होगा और यदि आरक्षण की बदौलत जीत कर आ भी गईं तो वे करेंगी क्या? इसके साथ ही वे यह हौवा खड़ा करने में लगे हैं कि आरक्षण के बाद उच्च वर्ग की महिलाएं ही ज्यादा जीतकर आ जाएंगी और तब महिला आरक्षण देने का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाएगा। इसीलिए कोटा के भीतर कोटा की मांग की जा रही है। यहां क्या यह सवाल उठाना जरूरी नहीं हो जाता कि विकास के तमाम दावे करने के बावजूद अभी भी देश में ऐसी स्थिति क्यों बनी हुई है कि महिलाओं की शिक्षा की समुचित व्यवस्था क्यों नहीं की गई और आजादी के इतने सालों बाद भी भारी तादाद में अशिक्षित क्यों बनी हुई है। इस बारे में किसी आंकड़ों के जाल न फंसा जाए तब भी यह एक खुली सच्चाई है कि अभी भी इसकी गारंटी नहीं की जा सकी है कि जाति, धर्म और अर्थ आदि के हिसाब से कोई बंटवारा किए बगैर ऐसी शिक्षा व्यवस्था बनाई जा सके कि सभी लड़कियों को अनिवार्य रूप से शिक्षा की गारंटी की जाए। जिस देश की आधी आबादी के लिए शिक्षा की ही समुचित व्यवस्था न हो उस देश का कैसा विकास होगा, इसका सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है।

अगर वास्तव में हमारे जन प्रतिनिधि यह चाहते हैं कि देश का समग्र विकास हो तो उन्हें इस बारे में सोचना ही होगा कि महिलाओं को अलग-थलग करके यह नहीं किया जा सकता। यह छोटी सी बात आखिर किसी के क्यों नहीं समझ में आती कि देश के इक्कीसवीं सदी में जाने के बाद भी महिलाओं के साथ आदिम युग जैसे अत्याचार व अनाचार हो रहे हैं। इस पर तभी रोक लगाई जा सकती है और महिलाओं को मुख्यधारा में शामिल किया जा सकता है जब उन्हें भी बराबरी का दर्जा मिल सकेगा और वे भी निर्णयों में बराबर की भागीदार बन सकेंगी। महिलाओं को अशिक्षित और अलग-थलग रखकर यह काम नहीं किया जा सकता है।

अगर वास्तव में हमारे जन प्रतिनिधि यह चाहते हैं कि देश का समग्र विकास हो तो उन्हें इस बारे में सोचना ही होगा कि महिलाओं को अलग-थलग करके यह नहीं किया जा सकता। यह छोटी सी बात आखिर किसी के क्यों नहीं समझ में आती कि देश के इक्कीसवीं सदी में जाने के बाद भी महिलाओं के साथ आदिम युग जैसे अत्याचार व अनाचार हो रहे हैं।

अब एक बार फिर यह आश्वासन दिया गया है कि विधेयक फिर से सदन में रखा जाएगा और इसे पारित कराया जाएगा। इस बार प्रधानमंत्री मनमोहन ने यह आश्वासन दिया है पर अभी भी यह देखने की बात रह जाएगी कि इसका क्या होता है। क्योंकि अभी कुछ समय पहले ही संसद का सत्र अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया गया है। उसमें इस विधेयक को लाने की चिंता किसी भी पार्टी को नहीं हुई। आने वाले सत्र में इसका क्या होगा यह तो भविष्य ही बताएगा। हां, यहां एक बार फिर यह बता देना जरूरी है कि दिल्ली में सीलिंग को लेकर रखे गए बंद और इस दौरान हुई हिंसक घटनाओं से परेशान केंद्रीय मंत्री जयपाल रेड्डी ने यह जरूर कहा है कि यदि आवश्यक हुआ तो संसद का विशेष सत्र बुलाकर संविधान में आवश्यक संशोधन कर इस मसले को सुलझाया जाएगा। वास्तव में अगर जरूरी हो तो ऐसा किया भी जाना चाहिए लेकिन यह सवाल रह ही जाता है कि आखिर ऐसा ही महिला आरक्षण विधेयक के साथ क्यों नहीं किया जा सकता।

-आशीष कुमार

उचित नहीं निजी क्षेत्र में आरक्षण

भारतीय उद्योग महासंघ यानी सीआईआई ने अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के लिए निजी क्षेत्र में आरक्षण दिए जाने का विरोध करते हुए इसे अनुचित बताया है। सीआईआई ने एक रिपोर्ट जारी कर समाज के पिछड़े लोगों के लिए एक कार्य योजना की घोषणा भी की।

चेन्नई में जारी इस रिपोर्ट में सीआईआई और भारत की उद्योग संस्था एसोचैम ने कहा है कि इस कार्ययोजना के तहत देश के दस विश्वविद्यालयों में दस हजार विद्यार्थियों के लिए कोचिंग सेंटर खोले जाएंगे। साथ ही तकनीकी और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की प्रवेश परीक्षा के लिए दस कोचिंग सेंटर बनाने के लिए प्रतिबद्धता भी जताई है। इसी वर्ष अप्रैल में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने निजी क्षेत्र से कहा था कि वे समाज के पिछड़े वर्गों को शामिल करने के लिए प्रयास करें। इसके बाद ही टाटा स्टील के पूर्व अध्यक्ष जेजे ईरानी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था जिसने अपनी रिपोर्ट जारी कर दी है।

ईरानी ने साफ तौर पर कहा है कि निजी क्षेत्र में आरक्षण की कोई संभावना नहीं है। निजी क्षेत्र में नौकरियां जाति के आधार पर नहीं दी जा सकतीं। हालांकि उन्होंने कहा कि उन्हें इस बात का एहसास है कि अनुसूचित जाति और जनजाति को प्रोत्साहित करना है। इसीलिए निजी क्षेत्र ने इस दिशा में कार्ययोजना बनाई है। रिपोर्ट में कहा गया है कि संगठित निजी क्षेत्र में केवल 80 लाख लोग काम करते हैं। ईरानी का कहना है कि अनुसूचित जाति और जनजाति के बारे में अधिक जानकारी और आंकड़े नहीं हैं लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वे निजी क्षेत्र में काम नहीं कर रहे हैं। समिति ने कहा है कि पहली बार भारतीय निजी क्षेत्र ने इस तरह पहल की है और आने वाले समय में वे अनुसूचित जाति और जनजाति के बारे में आंकड़े जमा करेंगे। इससे पहले समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रधानमंत्री और समाज कल्याण मंत्री मीरा कुमार को सौंपी। औद्योगिक महासंघ के प्रतिनिधियों ने कहा कि उन्होंने कंपनियों को कहा है कि वे सामाजिक संतुलन बनाने के लिए भरपूर प्रयास करें। □

इधर विधेयक उधर विरोध

यह अगस्त के अंतिम सप्ताह की बात है जब सरकार ने केंद्रीय उच्च शिक्षण संस्थानों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों के साथ ही अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण देने वाला विधेयक लोकसभा में पेश किया और उधर इसके विरोध में मेडिकल के छात्र न केवल सड़कों पर उतर आए बल्कि उनकी पुलिस के साथ झड़प भी हुई।

दरअसल जब केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह ने केंद्रीय शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए आरक्षण विधेयक 2006 प्रस्तुत किया जिसमें अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सभी पाठ्यक्रमों में 27 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है तब लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने कहा कि इस विधेयक को विचारार्थ स्थाई समिति के पास भेजा जाएगा।

केंद्रीय शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश में अध्ययन की प्रत्येक शाखा और संकायों में अनुसूचित जातियों के लिए 15 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों के लिए 7.5 प्रतिशत स्थान आरक्षित हैं। अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण की यह व्यवस्था लागू नहीं होगी। इसी तरह चुनिंदा उत्कृष्ट शिक्षा संस्थानों, अनुसंधान संस्थानों और राष्ट्रीय व सामरिक महत्व के संस्थाओं में यह आरक्षण लागू नहीं होगा।

विधेयक में कहा गया है कि केंद्रीय शैक्षणिक संस्थाएं आरक्षण की व्यवस्था वर्ष 2007 के कैलेंडर वर्ष के सत्र से ही लागू करने के लिए आवश्यक उपाय करेंगी। ये संस्थाएं आवश्यकतानुसार सीटों की संख्या में वृद्धि कर सकती हैं। जिन संस्थानों को आरक्षण के दायरे से बाहर रखा गया है वे हैं-होमी भाभा राष्ट्रीय संस्थान मुंबई तथा उससे जुड़ी इकाइयां, टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च मुंबई, नार्थ ईस्टर्न इंदिरा गांधी रीजनल इंस्टीट्यूट आफ हेल्थ ऐंड मेडिकल साइंस शिलांग, नेशनल ब्रेन रिसर्च सेंटर मानेसर (गुड़गांव), जवाहर लाल नेहरू सेंटर फार एडवांस साइंटिफिक रिसर्च बंगलोर, फिजिकल रिसर्च लैबोरेटरी तिरुवनंतपुरम और इंडियन इंस्टीट्यूट आप रिमोट सेंसिंग देहरादून। केंद्रीय संस्थाओं के दायरे में वे संस्थाएं शामिल होंगी जो केंद्र सरकार द्वारा प्रत्यक्षतया या अप्रत्यक्षतया अनुरक्षित या उससे सहायता प्राप्त हैं।

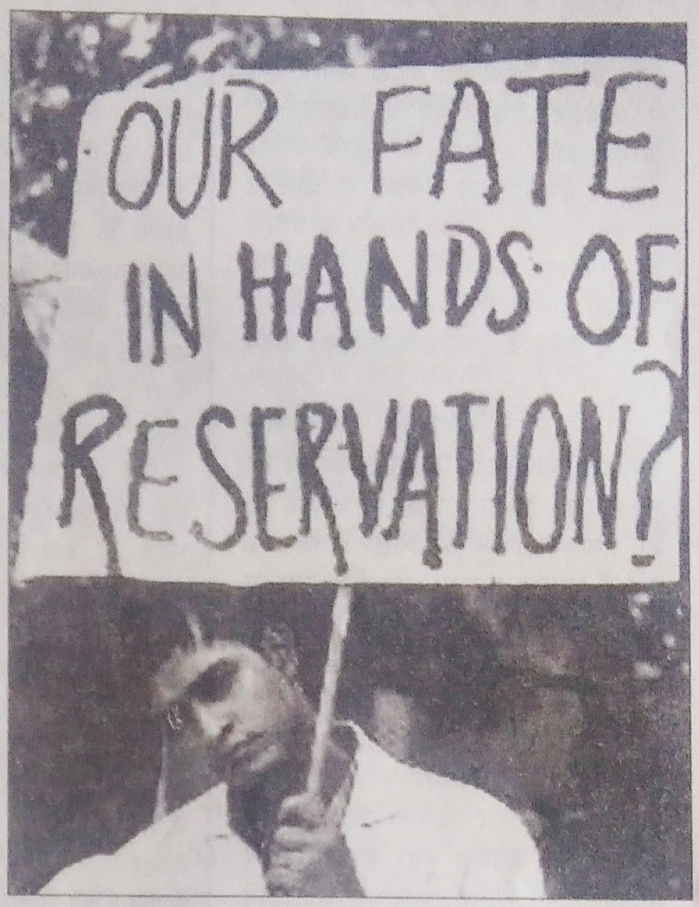

इस विधेयक के बारे मे अर्जुन सिंह ने कहा कि हम सभी चाहते हैं कि अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं। उन्होंने कहा कि यह स्थायी समिति में जाएगा तथा इस पर विचार-विमर्श होगा। उन्होंने कहा कि यह विधेयक संविधान के 93वें संशोधन की भावना के अनुरूप है जिसमें दुर्बल वर्ग के लोगों के लिए आरक्षण की व्यवस्था करने तथा संसद एवं राज्य विधान मंडलों द्वारा इस संबंध में आवश्यक कानूनी उपाय करने की बात कही गई है।

इस बारे में राष्ट्रीय जनता दल के देवेंद्र प्रसाद यादव ने आपत्ति उठाई थी कि विधेयक की अंग्रेजी और हिंदी प्रतियों में अंतर है। अंग्रेजी में क्रीमीलेयर को शामिल करने का उल्लेख है जो हिंदी में नहीं है। इस पर संसदीय कार्य मंत्री प्रियरंजन दास मुंशी ने कहा कि यह अनुवाद की त्रुटि है जिसे दूर कर लिया जाएगा।

मार्क्सवादी वरकला राधाकृष्णन ने कहा कि वह विधेयक का समर्थन करते हैं पर क्या इसमें अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान भी शामिल होंगे। भाजपा के योगी आदित्यनाथ ने विधेयक का विरोध करते हुए कहा कि संबंधित मंत्री जी की नियत ठीक नहीं है। प्रधानमंत्री और उनके बयानों में विरोधाभास है। अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं को विधेयक में शामिल करने से वंचित क्यों रखा गया है। इस पर अर्जुन सिंह ने कहा कि अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं को विधेयक में शामिल करने के पहले नामंजूर किया जा चुका है। इसके बाद उन्होंने सदन में विधेयक पेश किया जिसे ध्वनिमत से पुनरस्थापित करने की अनुमति प्रदान कर दी गई।

इसके बाद केंद्र सरकार के फैसले के खिलाफ आग एक बार फिर भड़क उठी। फैसले के विरोध में जंतर-मंतर पर प्रदर्शन कर रहे मेडिकल छात्रों और पुलिस के बीच काफी झड़प हुई। जंतर-मंतर पर आयोजित रैली के दौरान सुरक्षा घेरे को तोड़कर कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी के दस जनपथ स्थित निवास की ओर बढ़ रहे प्रदर्शनकारी छात्रों को रोकने के लिए पुलिस ने पानी की तेज बौछारें और आंसू गैस के गोले का प्रयोग किया।

सरकार के फैसले से नाराज मेडिकल कालेज के छात्रों ने इसी मुद्दे पर 20 दिनों की हड़ताल की थी। हालांकि उच्चतम न्यायालय के कहने पर यह हड़ताल वापस ले ली गई थी। उस समय केंद्र सरकार ने भी इन छात्रों को भरोसा दिलाया था कि ओबीसी आरक्षण मसले पर उनकी

चिंताओं का ध्यान रखा जाएगा।

रैली के दौरान शहर के सभी मेडिकल कालेजों से आए छात्रों, कई रेजीडेंट डाक्टरों ने सरकार से उच्च शिक्षण संस्थाओं में ओबीसी के लिए 27 फीसदी आरक्षण लागू करने संबंधी पूरा ब्योरा मांगा। एम्स के रेजीडेंट डाक्टरों की एसोसिएशन के अध्यक्ष और वाईएफई के सदस्य विनोद पात्रा ने उच्च शिक्षण संस्थानों में ओबीसी के लिए आरक्षण के केंद्र सरकार के फैसले को दुर्भाग्यपूर्ण बताया और उन्होंने कहा कि आरक्षण संबंधित विधेयक को संसद में पेश होने से रोकने के लिए छात्र हरसंभव कदम उठाएंगे।

डा. पात्रा ने कहा कि रैली- जाति आधारित आरक्षण के खिलाफ प्रदर्शन की शुरुआत भर है। हमने पहले भी कहा है कि हम समाज के किसी वर्ग विशेष के खिलाफ नहीं हैं पर सकारात्मक कार्रवाई के नाम पर जाति आधारित आरक्षण को सही नहीं ठहराया जा सकता। रैली का उद्देश्य लोगों को आरक्षण के खिलाफ लामबंद करना है।

मेडिकल छात्रों के इस प्रदर्शन में दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय और इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय के छात्र भी शामिल हुए। छात्र आरक्षण मुर्दाबाद और मेरिट बरकरार रखो की तख्तियां लिए हुए थे। उन्होंने सरकार से मई में इन 20 दिनों की हड़ताल के दौरान उनसे किए गए वादों को पूरा करने की मांग की।

वाईएफई के संस्थापक मदस्य सुस्मित सारंगी ने कहा कि सरकार को जिम्मेदारी से काम करना होगा। हमसे वादा किया गया था कि हमारी चिंताओं पर विचार किया जाएगा। पर इस निर्णय ने उन तमाम आश्वासनों को झूठा बना दिया है। उन्होंने डाक्टरों और छात्रों के हड़ताल पर जाने के बारे में कहा कि इस बारे में अभी कोई फैसला नहीं किया गया है। उधर, दिल्ली विश्वविद्यालय परिसर में भी आरक्षण के खिलाफ शांतिपूर्वक प्रदर्शन कर रहे यूनाइटेड स्टूडेंट्स के पांच छात्रों को हिरासत में ले लिया गया था। फिलहाल उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए डाक्टरों ने भले ही खुलकर विरोध करना और हड़ताल करना बंद कर दिया हो पर वे इस आरक्षण की व्यवस्था से सहमत कतई नहीं है। **-विनोद कुमार पांडेय**

जिम्मेदारी नौजवानों को उठानी होगी

वैश्वीकरण तो होना ही है, उसे रोका नहीं जा सकता लेकिन आर्थिक रूप से अगर भारत को सबसे आगे ले जाना है तो यह जिम्मेदारी नौजवानों को उठानी होगी। जर्मनी के अर्थशास्त्री नोर्बल्ट बाल्टर ने अपने अध्ययन में कहा है कि भारत की सुनहरी तस्वीर भारत के नौजवान अपने काबिल हाथों से रच रहे हैं। यह वही नई पीढ़ी है जो आजकल आरक्षण के खिलाफ मुहिम में उलझी हुई है।

ऐसे में मुख्य रूप से दो सवाल खड़े होते हैं। एक-जिन प्रतिभाओं पर आज के भारत का कल टिका हुआ है क्या उन्हें कुंठित होने से बचाना जरूरी नहीं है और दूसरा यह कि क्या प्रतिभाओं को ईमानदारी से मौका देने के लिए कुछ किया नहीं जाना चाहिए। भारत की युवा प्रतिभाओं ने दुनिया में अपना डंका पीटा है। बीपीओ, ईपीओ, केपीओ सेक्टर भारतीय नौनिहालों के हाथ की कठपुतली हो गया है। दुनिया के देश अभी कुछ साल पहले तक जो चीन की ओर भाग रहे थे, आज भारत की गणेश परिक्रमा कर रहे हैं। आलम यह है कि चीन जो कभी दुनिया का हुनर वाला हाथ आपूर्ति करता रहा हो, केवल 95 उच्चस्तरीय संस्थान रखता है जबकि भारत में आज इस कोटि के लगभग 600 संस्थान चलाए जा रहे हैं।

भारत की युवा प्रतिभाओं ने दुनिया में अपना डंका पीटा है। बीपीओ, ईपीओ, केपीओ सेक्टर भारतीय नौनिहालों के हाथ का खिलौना हो गया है।

हालांकि भारत होड़ के हिसाब से चीन से अभी 12 साल पीछे है। हमें इस बात को मानना होगा कि कई भारतीय उत्पाद कीमत और गुणवत्ता के लिहाज से अंतरराष्ट्रीय बाजार में नहीं टिक पाए हैं। नौकरशाही तथा भ्रष्टाचार के चलते देश की कार्य संस्कृति प्रभावित हो रही है वहीं अब सरकार आरक्षण को नए फार्मूले के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में पिछड़ों के लिए सीटें सुरक्षित कर रही है। सरकार की इस व्यवस्था से सीटों की कमी की समस्या पहले से और अधिक बढ़ जाएगी।

मालूम हो कि देश के सात बड़े आईआईटी संस्थानों में कुल सीटों की संख्या लगभग 3900 है। इसके लिए प्रतिवर्ष तीन लाख से अधिक उम्मीदवार अपने प्रवेश के लिए दिन रात एक कर देते हैं। सरकार ढांचागत विकास करने की दिशा में पिछले 24 वर्षों से कोई ठोस कदम नहीं उठा पाई है। नए आईआईटी, आईआईएम खोलने की जगह सरकार मौजूदा संस्थानों में आरक्षण का उपबंध कर जिस नई पीढ़ी के ऊपर आज के भारत का कल टिका है उसे कुंठित, निराश व हतोत्साहित ही कर रही है।

सरकार की अदूरदर्शिता का नतीजा है कि आईआईएम की एक सीट के लिए 250 योग्य छात्रों के बीच मुकाबला होता है। फिर आरक्षण से जुड़ा एक बड़ा सवाल यह भी है कि क्या मेरिट से समझौता करने के बाद भारतीय प्रतिभा की अमर बेल सलामत रहेगी। जिस प्रतिभा के बल पर भारत आज दुनिया को हैरान कर दे रहा है वह बेदाग बची रहेगी। अगर हम अपने युवाओं की काबिलियत पर संदेह करेंगे तो तय है कि हमारी कामयाबी की मीनार भी दरकने लगेगी क्योंकि उसकी बुनियाद में युवा प्रतिभा ही है। ऐसा नहीं कि पिछड़े वर्गों में प्रतिभा का दायरा विस्तृत होता है लेकिन आरक्षण से नहीं हो सकता। इसकी शुरुआत हमें निचले पायदान यानि प्राइमरी के स्तर से करनी होगी। विकास ऊंचे शिखर से नहीं होता जैसे पेड़ की सिंचाई फुनगियों से नहीं जड़ से होती है। प्रतिभा सिर्फ संरक्षण से नहीं, खुली होड़ से पैदा होती है। लेकिन सरकार होड़ के लिए तैयार नहीं है। ऐसे में तय है कि आरक्षण हमारा वह नुकसान कर सकता है जिसकी भरपाई संभव नहीं होगी। ❐

प्राथमिक स्कूलों के दो अनुभव

यह नए किस्म का आरक्षण है या कहें कि नए किस्म की स्कूल आधारित व्यवस्था है। लेकिन इनके परिणाम जाति आधारित व्यवस्था जैसे ही हैं। वर्ण या जाति आधारित व्यवस्था की सबसे बड़ी खामी ये थी कि प्रतिभा नहीं जन्म के आधार पर जिंदगी की दिशा निर्धारित करती थी। आप किस जाति में पैदा हुए हैं, इतने भर से आपकी जिंदगी का फैसला हो जाता था। ब्राह्मण पूजनीय होगा, क्षत्रिय दबंग, वैश्य धनी और दलित अपमानित, पीड़ित। वक्त बदला है तो कुछ स्थितियां भी बदली हैं। कम से कम एक नई किस्म की स्कूल आधारित व्यवस्था तो पैदा हुई ही है।

आप किस स्कूल में पढ़ते हैं, ये आपकी जिंदगी को निर्धारित करता है, कम से कम दिशा तो निर्धारित करता ही है। स्कूल आपको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और दलित बनाते हैं। अपने देश में कितनी तरह की शिक्षा व्यवस्थाएं हैं। सबसे मोटा फर्क तो सरकारी और निजी स्कूलों का होगा। फिर सरकारी में शहरी और ग्रामीण स्कूलों का। उनमें भी बेहतर और बदतर का। ऐसे ही निजी स्कूलों में गली-गली में खुले नाड़े जैसी टाई, अनपढ़ टीचरों वाले स्वयंभू कान्वेंट स्कूलों और फाइवस्टार इंटरनेशनल स्कूलों का। इनमें भी कई स्तर हैं। दिल्ली में इस विरोधाभास को साफ महसूस किया जा सकता है। मेरे पास दो उदाहरण हैं अपने को समझाने के लिए।

दक्षिण दिल्ली के कटवरिया सराय गांव में रहने वाला एक बच्चा है वहां के एक इंटरनेशनल स्कूल के चौथी कक्षा का छात्र। जाति की बात करें तो ये उच्च श्रेणी में नहीं आता, कहीं पिछड़े वर्ग में शामि ल होगा। उसके परिवार के पास पैसा बहुत है तो बच्चे को जो सबसे अच्छा प्राइवेट स्कूल लगा उसमें डाला गया। अब ये बच्चा एक दिन बीमार हो गया। वो बीमार हो गया इसलिए कि उसे लू लग गई थी। नहीं, इस बच्चे को दिन भर लू में घूमने की आदत नहीं थी क्योंकि उसे इसकी इजाजत ही कभी नहीं मिली थी। लेकिन जून की दोपहरी में उसे सड़क से घर तक करीब सौ मीटर छाते के नीचे आना पड़ता था। बाकी तो सब एसी था। घर एसी, स्कूल एसी और बस भी एसी। लेकिन कटवरिया सराय में उसके बहुमंजिला घर की गलियों तक बस नहीं आ सकती थी, तो कोई उसे छाते के नीचे लेकर आता था। यही सौ मीटर की गर्मी ये बच्चा नहीं सह पाया।

ये आश्चर्य की बात है इसलिए भी कि उसके मां-बाप आज भी घंटों धूप में घूम सकते हैं, बाप- चाचा अब भी कुश्ती लड़ते हैं, बारिश के पानी वाले झोड़ (तालाब) में डुबकी लगाते हैं। उसके दादा की एसी में तबियत खराब हो जाती है। उसके परिजनों

आप किस स्कूल में पढ़ते हैं, ये आपकी जिंदगी को निर्धारित करता है, कम से कम दिशा तो निर्धारित करता ही है। स्कूल आपको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और दलित बनाते हैं। अपने देश में कितनी तरह की शिक्षा व्यवस्थाएं हैं। सबसे मोटा फर्क तो सरकारी और निजी स्कूलों का होगा। फिर सरकारी में शहरी और ग्रामीण स्कूलों का। उनमें भी बेहतर और बदतर का। ऐसे ही निजी स्कूलों में गली-गली में खुले नाड़े जैसी टाई, अनपढ़ टीचरों वाले स्वयंभू कान्वेंट स्कूलों और फाइवस्टार इंटरनेशनल स्कूलों का। इनमें भी कई स्तर हैं।

को अब भी सलीकेदार नहीं, उजड्ड माना जाता है जो बोलते हैं तो बात कम गालियां ज्यादा निकलती हैं। लेकिन ये बच्चा नवाब खानदान का लगता है। उसकी बातचीत, चलने-फिरने, सोचने समझने सब का ढंग बदल गया है। वो अपने दोस्तों को उनकी जाति से नहीं आर्थिक हैसियत से नापता है। उसे अभी से पता है कि वो अपने पिता की तरह बसें नहीं चलवाएगा, ठेके नहीं लेगा या किसी माल में दुकान नहीं चलाएगा। वो या तो कोई बहुत बड़ा मैनेजर बनेगा, कोई कंप्यूटर प्रोफेशनल, कोई उद्योगपति या फिर विदेश चला जाएगा।

दूसरी कहानी थोड़ी छोटी है और सपाट भी। एक समाचार पत्र की खबर है। नोएडा के सरकारी प्राथमिक स्कूलों में स्कालरशिप बांटी गई। स्कालरशिप गरीब और होनहार बच्चों को दी जाती है। लेकिन आश्चर्य की बात कि ये स्कालरशिप लेने वाले पांचवीं कक्षा तक के कई होनहार बच्चे अपना नाम तक लिखने में असमर्थ थे। जी हां ये एक खबर है कि कई बच्चों ने स्कालरशिप के फार्म पर हस्ताक्षर करने के बजाय अंगूठे लगाए। ये बच्चे क्या बनेंगे, ये साफ है। हां इस सरकारी स्कूल में भी सभी जातियों के बच्चे पढ़ते हैं। ये पढ़ते नहीं सिर्फ हाजिरी लगाते हैं।

एक खुली अर्थव्यवस्था में आज इस बात से फर्क कम पड़ता है कि आप किस जाति के हैं, आप किस क्षेत्र के हैं। फर्क इस बात से ज्यादा पड़ता है कि आप कहां से पढ़े हैं और क्या पढ़े हैं। आप अंग्रेजी कितनी अच्छी बोल सकते हैं, आप कितने आत्मविश्वास के साथ लोगों से मिल सकते हैं, काम कर सकते हैं। आप पौड़ी से पढ़े हों, रांची से, केरल से या जम्मू से। अगर आप किसी अंग्रेजी माध्यम के अच्छे प्राइवेट स्कूल से पढ़े हैं तो कारपोरेट दुनिया आपका स्वागत करती है, उसे आपकी जाति से, आपकी मातृभाषा से कोई मतलब नहीं। लेकिन अगर आप किसी भी जगह ऐसे सरकारी स्कूल से पढ़े हैं जहां पढ़ाई के नाम पर आपको सिर्फ सर्टीफिकेट मिले हों, आत्मविश्वास के नाम पर उपेक्षा, गालियां मिली हों, भाषा के नाम पर मातृभाषा से राजभाषा तक का सफर आप ठीक से तय न कर पाए हों तो आपके लिए सभी शारीरिक श्रम के काम खुले हैं क्योंकि काम कोई छोटा नहीं होता। हां फिर आपकी जाति का भी महत्व है क्योंकि जाति के आधार पर आरक्षण मिलता है और नहीं मिलता। मूल बात यह है कि शिक्षा में फर्क आदमियों में फर्क पैदा कर रहा है। ये एक नई किस्म की वर्ण व्यवस्था पैदा कर रहा है। किस स्कूल में पढ़ने से आदमी ब्राह्मण बनेगा और किस स्कूल में एडमिशन लेकर वो दलितों वाली स्थिति पूरी जिंदगी झेलेगा, ये तय हो जा रहा है।

-वर्षा

सबको मिले शिक्षा का बराबर अधिकार

राजकुमार

पिछले दिनों आरक्षण के लेकर हिंदुस्तान में जो बवाल मचा, उसमें घोर दलित विरोध, घृणा व नफरत से भरा दिमाग और स्वार्थवादी कुलीन मानसिकता के अलावा कुछ नहीं था। शिक्षण संस्थाओं में सुविधाओं के विस्तार के आश्वासन के बावजूद यह उन्माद कम नहीं पड़ा, ये इसका प्रमाण है।

मंडल आयोग के बाद ये दूसरा अवसर है जब हिंदुस्तान की मीडिया का दलित विरोधी, समानता विरोधी, न्याय विरोधी और जातीय पूर्वाग्रहों से ग्रसित चरित्र खुलकर सामने आया है। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि आरक्षण के सवाल पर सवर्णों की भावनाओं को भड़काने में मीडिया ने केंद्रीय भूमिका निभाई है। असल में इसके पीछे मंशा ये है कि शिक्षा पर प्रभुत्वशाली तबकों का वर्चस्व बना रहे।

मीडिया ने इस तरह से मसले को दिखाया कि जैसे पूरा देश आरक्षण का विरोध कर रहा है जबकि वास्तविकता ये नहीं है। दूसरी तरफ ऐसा मीडिया भी है जो न्याय की जगह को पहचानता है और उस पर बात करता है। लेकिन शोर-शराबे में वो बात अनसुनी रह जाती है। इसी तरह का शोर-शराबा आरक्षण के सवाल पर मचाया गया। जिसमें छोटी-छोटी पत्रिकाओं की आवाज अनसुनी रह गई। अब बात ये है कि मीडिया को दोषी माना जाए या नहीं?

आरक्षण विरोधी उन्माद व विरोध के तौर-तरीकों पर गौर करें तो हम यह देख सकते हैं कि ये कितना अश्लील दृश्य है। कहीं पर ये कुलीन बूटों पर पालिश कर रहे हैं, कहीं पर झाडू लगा रहे हैं, कहीं पर कैमरे के सामने कार आदि साफ कर रहे हैं। इससे साफ जाहिर है कि पेशे को और काम को ये कितनी घृणित दृष्टि से देखते हैं। मेहनत के साथ इनका क्या संबंध है। वंचित तबके सदियों से ये ही काम करते आ रहे हैं जिनसे ये कुलीन इतनी घृणा करते हैं। इनके नारे, -गली का कुत्ता कैसा हो, एससी, एसटी जैसा हो-ये तमीज है। योग्यता पर, गरीबी पर बात की जा रही है। इस विरोध में जो क्लास शामिल है, हम आसानी से समझ सकते हैं कि गरीब व गरीबों के साथ इनका क्या संबंध है। इन सवर्ण कुलीनों के दिमाग में गरीबों के प्रति इतनी घृणा है जितनी दलितों के प्रति। इसलिए आर्थिक आधार पर आरक्षण की दलील कोई हदय से निकली आवाज नहीं है। अगर गरीबों का वास्तविक एजेंडा सामने आए तो उस पर भी ये कुलीन ऐसा ही रुख अपनाएंगे जैसा आरक्षण के सवाल पर। दलितों व देश के गरीबों के सवाल एक हैं। दरअसल, जानबूझकर इनमें विभाजन पैदा किया जा रहा है।

रही बात योग्यता की। क्या योग्यता का ठेका सिर्फ कुलीनों ने ले रखा है? किस बात को आधार पर बनाकर वंचित तबकों को अक्षम, अयोग्य करार दिया जा रहा है? और कोई योग्यता का सर्टिफिकेट देने वाला ठेकेदार कैसे हो सकता है? योग्यता के साथ हो क्या रहा है, इस देश में। जहां पर सीटों की बोलियां लगती हों वहां पर आरक्षण के मसले पर बवाल मचाकर, शिक्षा की खरीद-फरोख्त पर खामोश रहने का क्या मतलब है? शिक्षा को आज पैसे वाले के लिए आरक्षित कर दिया गया है। इस सवाल पर इन कुलीनों को कुछ क्यों नहीं सूझता। पेपर लीकेज, भाई-भतीजावाद, धांधलेबाजी, धन सत्ता के सामने आत्मसमर्पण के सामने योग्यता का क्या हश्र हो रहा है? आर्थिक आधार पर आरक्षण की बात कहने वाले व गरीबों के बहुत बड़े हिमायती लगने वाले ये तबके योग्यता का दंभ भर रहे हैं। योग्यता क्या है इनकी? योग्यता है बैंक बैलेंस। अगर हम देखना चाहें तो साफ-साफ देख सकते हैं कि योग्यता व गरीबों से इनका क्या लेना-देना है।

इसका एक पक्ष और भी है, वो है मुनाफा। अगर निजी शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण एक साल तक भी टलता है तो इसी से इन संस्थाओं को करोड़ों रुपये का मुनाफा होगा। इसलिए आरक्षण विरोधी आंदोलन को फंड सप्लाई किया गया। इस विरोध में कौन-कौन सी ताकतें शामिल हैं? कैसे गठजोड़ हैं? ये समझना बेहद जरूरी है। कुलीनों के नेतृत्व में चलने वाले इस विरोध में निजी शिक्षण संस्थाओं के मालिक, पूंजीपति अनिवासी भारतीय हैं। दूसरी तरफ देश की तमाम पिछड़ी ताकतें जिनमें खाप पंचायतें व अन्य कट्टर ताकतें शामिल हैं। ये है चरित्र इस आरक्षण विरोधी उन्माद का जिसने भगत सिंह, महात्मा गांधी जैसे हमारे राष्ट्रीय नेताओं व क्रांतिकारियों को भी नहीं बख्शा। इन क्रांतिकारियों की तस्वीरें भी उसी फासिस्ट कचरे में रख लीं जहां वे स्वयं पड़े हैं।

ये बात जायज है कि अवसरों की कमी है। लेकिन इसका समाधान आरक्षण विरोध नहीं है। न्याय की जगह को समाप्त करके किसी भी तरह की लड़ाई नहीं जीती जा सकती। शिक्षा को धन सत्ता से स्वतंत्र करने के लिए व्यापक आंदोलन चलाना बेहद जरूरी है। सबको शिक्षा का अधिकार मिले, धनवानों के लिए आरक्षण समाप्त किया जाए। अंत में ज्ञान आयोग की अज्ञानपूर्ण रिपोर्ट पर तो हम खेद ही व्यक्त कर सकते हैं। हो सकता है उन्हें अपनी अदूरदर्शिता पर गर्व हो। भगवान उन्हें सद्बुद्धि दे। ❐

दिसंबर अंक कृषि और किसानों पर

कलरव का दिसंबर का अंक कृषि किसान और आत्महत्या विषय पर केंद्रित होगा। ऐसे समय जब विकास की बहुत बातें की जा रही हैं, इस ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है कि कृषि प्रधान भारत में जिस किसान और खेती को मजबूत बनाने के लिए ठोस योजनाएं होनी चाहिए उन्हें आत्महत्या के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। जब देश के कर्णधारों का यह हाल हो रहा है तो सोचना पड़ेगा कि हमारे राजनीतिज्ञों की सोच में क्या है और वे किसका विकास करने में लगे हैं। इस विषय से संबंधित हर पहलू पर बेबाक टिप्पणियां, महत्वपूर्ण तथ्य, विश्लेषण, साक्षात्कार पुराने अनुभव, अन्य देशों में स्थिति आदि संबंधित विषयों पर लेख आदि आमंत्रित हैं। यदि आपके पास ऐसा कुछ है तो हमें तुरंत भेज सकते हैं।

संपादक

अभी भी सहमा-सहमा सा है वातावरण

सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का सम्मान करते हुए आरक्षण विरोधी आंधी गत एक जून को लगभग थम गई। डाक्टर काम लौट आए और सारे देश ने चैन की सांस ली। आरक्षण की यह दूसरी आंधी कितनों को लील गई, कितनों को जख्मी कर गई, इसके सही-सही आंकड़े न तो सरकार दे पा रही है और न ही विरोधी अथवा समर्थक खेमा। लेकिन सच यह है कि हजारों-हजार छात्रों का मनोबल टूट गया है। वे फिर से अंधेरे में भटक गए हैं। वातावरण अभी भी सहमा-सहमा सा है। सर्वोच्च न्यायालय के चाबुक ने आरक्षण विरोधी अभियान को लगाम तो लगा दी पर ठीक वैसे ही जैसे चिंगारी पर राख रख दी गई हो। न्यायालय की डांट-फटकार के बाद आंदोलन तो रुका पर दूसरी ओर संसद में संशोधन विधेयक रख दिया गया। हालांकि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने इस बाबत कांग्रेसी नेता वीरप्पा मोइली के नेतृत्व में एक कमेटी गठित कर मंडल-दो की सिफारिशों को लागू करने का सर्वमान्य रास्ता निकालने को कहा।

समिति बनाते समय यह कहा गया कि समिति मलाईदार (क्रीमीलेयर) तबके को चिह्नित करने तथा उन्हें लाभ देने के दायरे से वंचित करने के उपाय भी सुझाएगी। अब मोइली समिति की रिपोर्ट तैयार हो कर आ गई है। रिपोर्ट पूरी तरह से राजनीति की शिकार है। क्रीमीलेयर पर रानीतिक दलों की मारामारी से बचते हुए समिति ने इस बर्रे के छत्ते में हाथ डालने की जगह गेंद पूरी तरह से सरकार और प्रधानमंत्री के पाले में डाल दी है। कहने में कोई गुरेज नहीं कि अन्य दलों के साथ-साथ घोर मंडलवादी दल भी नहीं चाहते कि क्रीमीलेयर के लिए कोई फार्मूला लागू हो क्योंकि उन्हें अपनी खुद की दुकानदारी बंद होने का अंदेशा अधिक है। आइये देखते हैं कि तथ्य क्या बोल रहे हैं-

मुद्दा जाति आधारित आरक्षण का

केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह ने पांच अप्रैल 2006 को देश के आईआईटी और आईआईएम जैसे उच्च शिक्षण संस्थानों तथा केंद्रीय विश्वविद्यालयों में पिछड़ों के लिए 27 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का सुझाव दिया। (अनुसूचित जाति, जनजाति वर्ग के छात्रों के लिए 22.5 प्रतिशत सीटें पहले से आरक्षित हैं) केंद्रीय मंत्री ने साथ ही निजी क्षेत्र के उपक्रमों की नौकरियों में आरक्षण लागू करने की बात कही।

पृष्ठभूमि-देश में सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक तौर पर आरक्षण की व्यवस्था भले ही पुरानी रही है लेकिन आजादी के बाद पहली बार काका केलकर के नेतृत्व में सन 1953 में एक आयोग गठित किया गया जिसने दो साल बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह अलग बात है कि तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने पंचवर्षीय योजना को आगे कर समिति की संस्तुति खारिज कर दी। वर्ष 1978 में वीपी मंडल के नेतृत्व में एक चौदह सदस्यीय आयोग गठित किया गया।

समिति बनाते समय यह कहा गया कि समिति मलाईदार (क्रीमीलेयर) तबके को चिह्नित करने तथा उन्हें लाभ देने के दायरे से वंचित करने के उपाय भी सुझाएगी।

आयोग में एस.एस गिल, एमएन श्रीनिवास, प्रोफेसर राय बर्मन, जोगेंद्र सिंह सरीखे लोग शामिल थे। आयोग ने वर्ष 1980 में अपनी रिपोर्ट तत्कालीन गृहमंत्री ज्ञानी जैल सिंह को सौंप दी। आयोग के एक मात्र दलित सदस्य एल आर नायर ने रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। उनका कहना था कि आयोग ने जिन जातियों को पिछड़े वर्ग में रखने की सिफारिश की है उसमें से यादव और कुर्मी को शामिल नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उनके पास जमीन का मालिकाना हक है।

आयोग की संस्तुतियां

आयोग ने अन्य पिछड़ी जातियों की पहचान के ग्यारह आवश्यक तत्वों की शिनाख्त की तथा कहा कि जो लोग सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक रूप से कमजोर हैं तथा शारीरिक श्रम की धुरी पर जीवन यावन कर रहे हैं उन्हें आरक्षण का लाभ देकर उनका स्तर उठाया जाना चाहिए। आयोग ने इस वर्ग के छात्रों को आगे बढ़ाने के लिए स्कूल खोलने तथा अन्य क्षेत्र में विकास के लिए आरक्षित दर पर ऋण मुहैया कराने की बात की। इस तरह की कुल बारह संस्तुतियां की थीं। लेकिन इंदिरा गांधी सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों को खारिज कर दिया तथा कहा कि आयोग द्वारा दिए गए तथ्य आधारहीन हैं। दस साल बाद सात अगस्त 1990 को विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार ने इसे हूबहू लागू कर दिया।

मंडल आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि अन्य पिछड़ी जातियों की संख्या देश में 52 प्रतिशत हैं जबकि 1931 तक जाति आधारित गणना का कोई रिकार्ड उपलब्ध नहीं है। दूसरी तरफ पंचवर्षीय राष्ट्रीय सैंपल सर्वे के आंकड़े के मुताबिक ओबीसी की संख्या 32 प्रतिशत आंकी गई। जबकि वर्ष 1998 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य कल्याण विभाग ने अपने सर्वेक्षण में ओबीसी का प्रतिशत 28 बताया है। इसके ठीक उलट वर्ष 1993 से 2006 लगभग तेरह वर्षों के भीतर पिछड़ी जातियों के वर्ग में 90 प्रतिशत का इजाफा हुआ है। 1993 में जहां 1257 जातियों को पिछड़ी की श्रेणी में रखा गया था वहीं 2006 आते-आते इनकी संख्या 2297 पहुंच गई है।

वैधानिक स्थिति

संविधान के अनुच्छेद 15 की धारा 5 के तहत 104वां संशोधन विधेयक 21-12-2005 को पारित किया गया और कहा गया कि 20-01-2006 से उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण लागू किया जाएगा। इसके खिलाफ उच्चतम न्यायालय में दायर जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए मुख्य न्यायाधीश वी एन खरे के नेतृत्व में ग्यारह जजों की पीठ ने इसकी वैधता परखी। अदालत ने साफ कहा कि किस जाति को किस वर्ग में शामिल किया जाए, इसकी व्याख्या संविधान नहीं कर सकता।

1992 में उच्चतम न्यायालय ने क्रीमीलेयर का सवाल उठाया तथा कहा कि सरकार को यह देखना चाहिए कि किसे

आरक्षण मिले, किसे नहीं।

संसद द्वारा नया कानून बन जाने के बाद केंद्र सरकार इसे लागू करने के उपायों पर गौर कर रही है। मालूम हो कि अमेरिका, कंबोडिया और इंडोनेशिया जैसे देशों में भी पिछड़े वर्ग को आगे करने के लिए आरक्षण की व्यवस्था है। इस दौरान सीआईआई और फिक्की जैसे संगठनों ने सरकार के निर्णय के खिलाफ अदालत में याचिका दायर की। याचिका पर सुनवाई करते हुए अदालत ने 29-5-2006 को भारत सरकार से तीन प्रश्नों का जवाब मांगा-

1-पिछड़ा वर्ग में शामिल होने का वास्तविक आधार क्या है?

2-उन्हें आगे बढ़ाने की अब तक सरकार की नीति क्या रही है?

3-उन नीतियों के क्रियान्वयन के लिए क्या कदम उठाए हैं? (सरकार ने अब तक कोई जवाब नहीं दिया है।)

केंद्र सरकार की नौकरियों में एससी,एसटी की स्थिति

दिनांक	श्रेणी (क)	श्रेणी (ख)	श्रेणी (ग)	श्रेणी (घ)
01-01-1974	1.94	4.99	10.33	
01-01-1999	11.29	12.68	15.78	18

कुछ बातें आरक्षण के पक्ष में

सह सर्वमान्य सत्य है कि हमारे देश में एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो लंबे समय से शोषित और उपेक्षित रहा है। आरक्षण से उसे निश्चित रूप से लाभ मिला है। अगर केंद्र सरकार की नौकरियों को ही लें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आरक्षण के जरिये वंचित लोगों को अवसर मिले हैं।

आंकड़े बताते हैं कि आरक्षण का लाभ कुछ जरूरतमंदों को अवश्य हुआ है लेकिन एक समूचा सच यह भी है कि जाति आधारित आरक्षण सही मायनों में वंचितों को ऊपर उठाने का कम राजनीतिक दलों की राजनीति ज्यादा है। वैसे भी इसके लिए अधिक हो हल्ला वही मचा रहे हैं जो संसद और विधानसभाओं में महिलाओं के आरक्षण का विरोध करते हैं। बाबा साहब अंबेडकर के नाती प्रकाश अंबेडकर ने 12वीं लोकसभा के दौरान ही कहा था कि आरक्षण का लाभ ले चुके लोगों को बाहर निकाल कर ही यह व्यवस्था लागू करनी चाहिए।

वे लोग जो आरक्षण के पक्षधर हैं

1-ज्ञान आयोग के दो सदस्य क्रमशः जयति घोष और पीएम भार्गव

2-योजना आयोग के सदस्य प्रोफेसर भालचंद्र मुंगेकर

3-समाजसेवी मेधा पाटकर

4-देश के वे सभी राजनीतिक दल जिन्हें चुनाव में मत हासिल करने हैं।

वे लोग जो जाति आधारित आरक्षण का खुला विरोध कर रहें हैं-

1-ज्ञान आयोग के छह सदस्य- क्रमशः सैम पित्रोदा, नंदन नीलकेनी, दीपक नायर, अशोक गांगुली, एंड्रे ब्रेटली और बीपी मेहता

2-इंफोसिस के प्रमुख नारायणमूर्ति

3-फिक्की तथा सीआईआई

4-आर्ट आफ लिविंग के धर्म गुरु श्रीश्री रविशंकर

5-इंडियन लेवरल ग्रुप के राष्ट्रीय संयोजक वीएस राजू

6-समाज निर्माण अभियान में जुटे शिव खेड़ा

7-आजादी बचाओ आंदोलन के राजीव दीक्षित

गौरतलब है कि देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने आरक्षण का न सिर्फ कड़ा विरोध किया था बल्कि 27 जून 1961 को देश के सभी मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखकर सांप्रदायिक और जाति आधारित आरक्षण से परहेज करने की हिदायत भी दी थी। बाद में उनके नाती पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भी वीपी सिंह के आरक्षण का विरोध करते हुए कहा था कि राजा साहब देश को जाति के नाम पर तोड़ने पर आमादा हैं। बहरहाल, राजा विश्वनाथ प्रताप सिंह के बाद खांटी कांग्रेसी कहने वाले अर्जुन सिंह को अपने कांग्रेसी पुरखों की कही हुई बातों से अधिक आरक्षण से मिलने वाला लाभ भा रहा है। उन्होंने आरक्षण की फसल बो दी है, मन ही मन काटने के लिए भी तैयार हैं लेकिन उन्हें इस बात का भी अहसास होना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट के डंडे से आरक्षण विरोध की चिंगारी पर फौरी तौर पर राख भले पड़ गई हो, अगर वह राख विरोध की आंधी से कहीं उड़ी तो धधक उठेगी।

प्रस्तुति : अरुंधती राय

संपादक चाहिए-दलित ही आवेदन करें

पांडिचेरी के एक निजी प्रकाशन नवयान संस्था ने विज्ञापन दिया है, एक अदद संपादक चाहिए-दलित ही आवेदन करें।

जहां एक ओर देश आरक्षण विरोध की आंच में झुलस रहा है वहीं एक निजी प्रकाशन ऐसा भी निकलकर बाहर आया है जिसने दलितों को सौ प्रतिशत आरक्षण देकर अफरमेटिव ऐक्शन की शुरुआत कर दी है। अपनी वेबसाइट पर दिए गए विज्ञापन में संस्था ने पुस्तक संपादक पद के लिए स्नातकोत्तर छात्रों से आवेदन मांगा है लेकिन शर्त यही है कि सिर्फ दलित ही आवेदन करें।

अब सवाल उठता है कि इस तरह का विज्ञापन संविधान सम्मत है? क्या यह विज्ञापन समाज को सही संदेश दे रहा है? क्या मुख्यधारा के प्रकाशकों द्वारा दलितों से जुड़े मुद्दों पर लिखी पुस्तकों को प्रकाशित नहीं करना, उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझना ऐसे प्रकाशन गृह शुरू करने की वजहें हैं?

सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ता संविधान विशेषज्ञ पी पी राव मानते हैं कि इसमें कुछ भी असंवैधानिक नहीं है। अनुच्छेद 14 के अनुसार बराबरी का प्रावधान निजी संस्थानों पर नहीं लागू होता। वे उदाहरण देते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण अपनी गाड़ी चलवाने के लिए किसी ब्राह्मण ड्राइवर को ही रखना चाहे तो सरकार इसमें क्या करेगी? यह उसका अपना निजी मामला है। जैसी जिसकी जरूरत है उसके अनुसार वह व्यक्ति नियुक्त कर सकता है। इस तरह का विज्ञापन देना भी गैर कानूनी नहीं है। इस तर्क की कसौटी पर तब तो निजी संस्थानों में कानूनन आरक्षण असंवैधानिक होगा। दलित नेता उदित राज ने विज्ञापन की बाबत पूछे जाने पर कहा कि जिसकी जैसी जरूरत वैसा आदमी रख लेता है तो क्या बुराई है?

दलित लेखक संघ की अध्यक्ष विमल थोराट ने छूटते ही पहले यह पूछा कि आप इसके पक्ष में लिख रहे हैं कि विरोध में? फिर कहा कि नवयान को लगता होगा कि दलित कार्यकर्ता ही कर्तव्य का निर्वाह कर सकता है सो उसने ऐसा विज्ञापन दिया होगा। □

प्रतिभा का मिथकशास्त्र

"हम लोग अंतरविरोधों की एक नई दुनिया में प्रवेश कर रहे हैं। राजनीति में हम समान होंगे और सामाजिक-आर्थिक जीवन में हम लोग असमानता का सामना करेंगे। राजनीति में हम एक व्यक्ति-एक वोट और एक व्यक्ति-एक मूल्य के सिद्धांत को स्वीकार करेंगे। लेकिन हमारे सामाजिक-राजनीतिक जीवन में, हमारे मौजूदा सामाजिक आर्थिक ढांचे के चलते हम लोग एक लोग-एक मूल्य के सिद्धांत को हमेशा खारिज करेंगे। कितने दिनों तक हम अंतरविरोधों का यह जीवन जी सकते हैं? कितने दिनों तक हम सामाजिक और आर्थिक जीवन में बराबरी से इनकार करते रहेंगे।"

डा. बाबा साहब अंबेडकर, संविधान सभा की आखिरी बैठक में भाषण

सुभाष गाताडे

वंचितों-पीड़ितों के सीमित सशक्तिकरण के लिए संसद में लगभग सर्वानुमति से किए गए संविधान संशोधन का-क्या अंग्रेजी मीडिया में कुंडली मारकर बैठे चंद कलमजीवियों और टैक्सचोरी के मामले में नए-नए रिकार्ड कायम करने वाले पूंजीपतियों और उनके सिपहसालारों द्वारा किए जा रहे मिले जुले शोरगुल के मद्देनजर मुल्तवी किया जा सकता है, यहां तक कि खारिज किया जा सकता है। इसका जवाब एक सुर से यही होगा, नहीं।

अलबत्ता मानव संसाधन विकास मंत्री जनाब अर्जुन सिंह द्वारा इसी संविधान संशोधन के मद्देनजर आईआईटी और आईआईएम जैसे उच्च शिक्षा संस्थानों में दलित-आदिवासी एवं अन्य पिछड़ी जाति के छात्रों के लिए सीटें आरक्षित करने का प्रस्ताव जब से रखा गया है, तब से इन लोगों द्वारा ऐसा हंगामा किया जा रहा है गोया कोई कहर बरपा हो गया हो। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वे चाहते हों कि वर्ष 1990 का हंगामा फिर दोहराया जा सके। याद हो जब 1990 में वीपी सिंह सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों को देश के पैमाने पर लागू करने का ऐलान किया था, तब उत्तर भारत के चंद शहरों में छात्रों के आत्मदाह से लेकर तरह-तरह का विरोध समाने आया था, जिसे उन दिनों सत्ता से बाहर रहने वाली कांग्रेस तथा भाजपा दोनों ने अंदर से शह दी थी।

ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वे चाहते हों कि वर्ष 1990 का हंगामा फिर दोहराया जा सके। याद हो जब 1990 में वीपी सिंह सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों को देश के पैमाने पर लागू करने का ऐलान किया था, तब उत्तर भारत के चंद शहरों में छात्रों के आत्मदाह से लेकर तरह-तरह का विरोध समाने आया था, जिसे उन दिनों सत्ता से बाहर रहने वाली कांग्रेस तथा भाजपा दोनों ने अंदर से शह दी थी।

लेकिन पिछले डेढ़ दशक के दौरान हिंदोस्तां का सियासी-समाजी मंजर जिस तरह बदला है, जिस तरह दलित-पिछड़ी जातियों की राजनीतिक सामाजिक दावेदारी सामने आई है, उनका एसर्सन बढ़ा है, उसके चलते ऐसी कोई स्थिति बनने वाली नहीं है। यह जुदा बात है कि कांग्रेस पार्टी के अंदरूनी सत्ता संघर्ष में अर्जुन सिंह के मुखालिफ खेमे में खड़े लोग इस प्रस्ताव को फिलवक्त ढंडे बस्ते में डाल दें ताकि इसी बहाने उनका जो कद ऊंचा होता दिख रहा है, उनके पर कतरे जा सकें। यह भी मुमकिन है कि इसके पहले कई मसलों पर ढुलमुल रवैया अख्तियार करने वाले वजीरे आजम मनमोहन सिंह खुद नवउदारवादी आर्थिक सुधारों के बहाने बनी अपनी लिबरलायजर की छवि को बरकरार रखने के लिए इस अहम प्रस्ताव में अडंगा डाल दें। अभी इस मामले में ताजा समाचार यह है कि चुनाव आयोग की कुछ आपत्तियों के मद्देनजर इसे मुल्तवी रखा जा रहा है, लेकिन ज्यों ही चुनाव संपन्न होंगे, इसके बारे में फैसला लेना ही होगा। वैसे वे सभी, जिनके लिए मीडिया के एक हिस्से से हो रहे शोरगुल के चलते इस पूरे मसले की तह तक जाना मुमकिन नहीं लगता होगा, उनके लिए चंद बातें पेशेनजर हैं-

लोगों को याद होगा कि पिछले साल निजी शिक्षण संस्थानों को लेकर आला अदालत का एक ऐतिहासिक फैसला आया था। इस फैसले के तहत ऐसे संस्थानों में सामाजिक उत्पीड़न के आधार पर आरक्षण को खारिज किया गया था। लेकिन आप्रवासी भारतीयों के लिए जो एडमिशन के लिए इन सीटों के लिए अधिक दाम दे सकते थे, कुछ फीसदी सीटें आरक्षित रख दी गई थीं। लाजिमी था आला अदालत के इस फैसले की जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई थी, सभी राजनीतिक पार्टियों ने केंद्र सरकार पर दबाव बनाया था। नतीजतन केंद्र सरकार की पहल पर संविधान संशोधन हेतु बिल लाया गया, जिस पर सबने मुहर लगा दी। संविधान के इस 93 वें संशोधन ने संविधान की धारा 15 में एक और उपधारा 5 जोड़ दी जिसके तहत सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह शिक्षा संस्थानों, जिसमें निजी शिक्षा संस्थान भी शामिल हैं, उनमें अन्य पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण लागू कर सकती है। मानव संसाधन विकास मंत्री की ओर से आईआईटी या आईआईएम जैसे शिक्षा संस्थानों में अन्य पिछड़ी जातियों के लिए सीटों में 27 फीसदी आरक्षण का प्रस्ताव इसी के तहत सामने आया है।

हम सभी जानते हैं कि आरक्षण की किसी भी योजना का या अमेरिका में कायम एफरमेटिव एक्शन के किसी भी कार्यक्रम का बुनियादी तर्क क्या होता है। इसके मुताबिक जाति, लिंग, नस्ल जैसी एसर्टिव कैटेगरीज के आधार पर बंटे समाज में अगर सभ्यतात्मक कारणों से पीछे छूटे समुदायों को समान अवसर हासिल करने की स्थिति में लाना है तो उनके लिए पाजिटिव

डिस्क्रिमिनेशन की नीतियां लागू करनी ही होंगी। यह जम्हूरियत का तकाजा है कि हुकूमत में बैठे लोग ऐसे उत्पीड़ित तबकों के लिए खास योजना बनाएं।

वैसे वंचितों के लिए विशेष अवसर उपलब्ध कराने को लेकर अक्सर यही छवि बनाई जाती है कि उससे अर्थव्यवस्था पर बोझ बढ़ेगा, गैरकाबिल लोग पदों पर बैठ जाएंगे आदि। लेकिन हकीकत इससे बिल्कुल विपरीत है। आरक्षण से होने वाले आर्थिक फायदों के बारे में हिंदुस्तान में हुए किसी अध्ययन का अंदाजा नहीं है, लेकिन अगर हम अमेरिका के अनुभव पर नजर डालें तो एक सकारात्मक चित्र दिखता है। वहां एफरमेटिव एक्शन कार्यक्रम के तहत अश्वेतों और अन्य अल्पसंख्यकों को शिक्षा तथा रोजगार के स्थानों पर बढ़ावा देने की नीति बनी है, जिसकी हिमायत वहां की बड़ी-बड़ी कंपनियां तक करती हैं। अमेरिका की तवारीख में पिछले दिनों एक ऐतिहासिक मुकदमे की काफी चर्चा हुई, जिसके तहत शिक्षा संस्थानों में एफरमेटिव एक्शन कार्यक्रम के औचित्य पर बहस चली।

गौरतलब है कि फार्चून 500 में शामिल अमेरिका की कई अग्रणी कंपनियों माइक्रोसाफ्ट, इंटेल, केलोग, कोडक आदि ने - एफरमेटिव एक्शन कार्यक्रम की हिमायत में अर्जी दी। इसवी 2003 में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने अपना फैसला सुनाया, विश्वविद्यालय छात्रों के चयन में नस्ल को एक कारण समझ सकते हैं क्योंकि उससे शैक्षिक लाभों में बढ़ोतरी होती है।

वैसे पिछड़ी जातियों को उच्च शिक्षा संस्थानों में सीटें आरक्षित करने की इस चर्चा ने इस देश के बुद्धिजीवी कहे जाने वाले (जिनका बड़ा हिस्सा सवर्ण हिंदुओं का है) तबकों में गहराई में व्याप्त वर्ण मानसिकता अधिकाधिक स्पष्ट हुई है। सदियों से अपनी जाति, लिंग, नस्ल के आधार पर अलिखित आरक्षण का फायदा उठा रहे इन तबकों ने हमेशा ही सामाजिक आधार पर आरक्षण की किसी भी योजना को हमेशा ही खारिज किया है। दरअसल ऐसे तबके जो जाति, लिंग, नस्ल जैसे वर्गीकरण के बलबूते ही पीढ़ी दर पीढ़ी एक अलिखित आरक्षण का फायदा उठा रहे हैं, ऊंची जाति का होने के नाम पर या पुरुष होने के नाम पर या गोरे होने के नाम पर लगातार लाभान्वित होते रहे हैं, उनके लिए ऐसी तमाम नीतियां नागवार गुजरी हैं। ऐसे तबकों को यही खतरा सताता है कि तालीम और रोजगार के इन अवसरों पर उनकी जो इजारेदारी सदियों से कायम थी वह टूट रही है। लेकिन अपने स्वार्थों को लच्छेदार भाषा में ढंकते हुए उन्होंने हमेशा ही आरक्षण के चलते मेरिट को होने वाले कथित नुकसान का हवाला दिया है। उनका जातिवादी, नस्लवादी किस्म का तर्क यही होता है कि ऐसे गंदे लोग शिक्षा संस्थानों में आ जाएंगे, रोजगारों पर काबिज हो जाएंगे तो मेरिट पर असर पड़ेगा, देश रसातल में चला जाएगा।

उन्होंने अपने स्वार्थों से आगे बढ़ते हुए कभी भी यह समझने की कोशिश नहीं की कि आजादी के बाद हमारे मुल्क में सामाजिक तौर पर उत्पीड़ित तबकों के लिए एफरमेटिव एक्शन की नीतियां लागू की गई होतीं, शिक्षा से लेकर रोजगार के अवसरों में सदियों से वंचित तबकों के लिए खास कदम बढ़ाए नहीं गए होते, तो तमाम प्रतिभाशाली लोग जो आज की तारीख में विभिन्न स्तरों पर काम करते हुए मुल्क की नैया के खेवैया बने हुए हैं, कभी अपनी प्रतिभा का जौहर दिखा नहीं पाते।

हमारे हुक्मरान दावा जो भी करें, आरक्षण की पहले से जारी नीतियों पर भी ठीक से अमल नहीं हो पा रहा है। ऐसे तबके जो विभिन्न कारणों से हाशिये पर हैं, उन्हें आगे बढ़ाने के लिए नीतियां कागज पर ही दौड़ती रह जाती हैं। कुछ समय पहले की ही बात है, जस्टिस राजेंद्र सच्चर कमेटी को लेकर संघ के नेताओं ने तथा चंद निहित स्वार्थी तत्वों ने काफी हल्ला किया। लेकिन क्या उन्होंने कभी हकीकत जानने की कोशिश की कि माजरा क्या है।

द हिंदू के अपने लेख (12 अप्रैल 2006) में वरिष्ठ पत्रकार हरीश खरे बताते हैं कि पिछले साल आईएएस, आईपीएस, आईएफएस तथा अन्य केंद्रीय सेवाओं में चुने गए 422 लोगों में से महज 11 मुसलमान थे। इन 11 में से आठ प्रत्याशी अन्य पिछड़ी जातियों की श्रेणी के तहत उसमें पहुंच पाए। वे ठीक कहते हैं कि आज की तारीख में जब नई अर्थव्यवस्था हमारे समाज में नई गैरबराबरियों को जन्म दे रही है, तब हिंदुस्तानी हुकूमत और उसके सियासी नुमाइंदों को चाहिए कि वे एक हद तक न्याय को संस्थाबद्ध करने की दिशा में कदम बढ़ाएं। □

सामान्य वर्ग के अवसर नहीं घटेंगे

भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा है कि उच्च शैक्षणिक संस्थानों में प्रस्तावित आरक्षण से सामान्य वर्ग के छात्रों के लिए अवसर कम नहीं होंगे ।

प्रधानमंत्री ने कहा कि असामान्य वर्ग के अवसर नहीं घटेंगेारक्षण की व्यवस्था से पिछड़े वर्गों को सामाजिक रुप से सशक्त बनाने में मदद मिलेगी ।

गौरतलब है कि संसद के मानसून सत्र में उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जाति,जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण से संबंधित विधेयक पेश किया गया था। इस पर संसद की स्थाई समिति विचार कर रही है। दिल्ली के एक महिला कॉलेज में आयोजित कार्यक्रम में डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा, इस मुद्दे पर हम दो तरीकों से आगे बढ़ रहे हैं। सबसे पहले तो हमें ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिससे पिछड़े वर्गों से इतर अन्य बच्चों के लिए शिक्षा के अवसर घट जाएँ। प्रधानमंत्री ने कहा कि अभी पिछड़े समुदाय के सिर्फ १० फीसदी छात्र ही कॉलेज स्तर की पढ़ाई कर पाते हैं।

उन्होंने कहा कि आरक्षण के मामले में आर्थिक मानकों की भी भूमिका है। संसद की स्थाई समिति के विचाराधीन विधेयक के तहत आईआईटी और आईआईएम जैसे उच्च शिक्षा संस्थानों और केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में आरक्षण का प्रावधान होगा। इसमें अन्य पिछड़े वर्गों के लिए २७ प्रतिशत तक के आरक्षण की व्यवस्था है।

दायरा बढ़ेगा-

इस बीच मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह ने कल पत्रकारों से कहा कि केन्द्र सरकार गैर सहायता प्राप्त संस्थानों में भी पिछड़ी जातियों के आरक्षण के लिए एक विधेयक लाने की योजना बना रही है। उन्होंने कहा,यथा समय एक और विधेयक लाया जायेगा और आप इस बारे में जान जाएंगे। कुछ समय पहले जब मानव संस्थान विकास मंत्री अर्जुन सिंह ने केन्द्र सरकार की सहायता से चलने वाले उच्च शिक्षा संस्थानों में पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण की बात कही थी तो काफी हंगामा हुआ था।

वास्तविकता और मिथक

नीरा चंडोक

नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन का मानना है कि भारतीयों में आम चर्चा और तर्कशील बहस की लंबी परंपरा रही है। लेकिन आज यह परंपरा अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण को लेकर पैदा हुए विवाद ने हाईजैक कर ली है। आज हमारी बहस में कड़वाहट, घृणा और जातीय विद्वेष की बू आ रही है। इन कारणों से इस बहस में शामिल होना मुश्किल प्रतीत हो रहा है। लेकिन इसमें शामिल होना भी जरूरी है, क्योंकि उस समाज का पूरा भविष्य दांव पर लगा है, जो विवादित मुद्दों को कड़वाहट भरे झगड़ों के बजाय आपसी बातचीत से सुलझाने के आधार पर काम करता है।

विवाद की जड़ में यह आरोप है कि आरक्षण समानता के सिद्धांत के खिलाफ है। हर एक को अवसरों के ढांचे तक पहुंचने के साथ ही, निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का समान हक है, भले ही वह किसी भी जाति, धर्म, लिंग अथवा वर्ग का हो। इसको लोकतंत्र की आम भाषा में एक व्यक्ति, एक वोट भी कहा जा सकता है।

भारत जैसे असमान समाज में हर किसी को अवसरों का समान लाभ नहीं मिल सकता और न ही वह निर्णय लेने की प्रक्रिया में समान रूप से शामिल हो सकता है। वह व्यक्ति जिसके पास रोटी, कपड़ा और मकान जैसी जीवन की बुनियादी जरूरतों की कमी है, वह किसी भी तरह से अमीरों, विशेषकर अतिसंपन्न वर्ग की बराबरी नहीं कर सकता है। भारत में गरीब बच्चे न केवल अशिक्षित हैं, बल्कि वे कुपोषण के शिकार हैं, बेघर हैं और बीमारियों के करीब हैं। असमानता को दूर करने के लिए सरकार का कर्तव्य है कि वह ऐसे दबे लोगों को मुफ्त शिक्षा, सुनिश्चित आय, पोषक भोजन व स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराए। यह वे न्यूनतम चीजें हैं जो एक अच्छे समाज द्वारा पिछड़े लोगों को दी जानी चाहिए, क्योंकि हरेक को आत्मसम्मान से जीने का हक है। ऐसा नहीं है कि यह तर्क मेरिट का सम्मान नहीं करता। बल्कि इसका अर्थ यह है कि हर बच्चे को मूल जरूरतों के जरिये उसकी क्षमताओं को मेरिट में बदलने का मौका दिया जाना चाहिए। इससे वह संपन्न बच्चों की बराबरी कर सकेगा। इसको समतावाद कहा जाता है।

यहां पर महत्वपूर्ण है कि समतावाद मानवतावाद नहीं है, वह संसाधनों को अमीरों से गरीबों को हस्तांतरित करने की बात करता है। मानवतावादी कल्याण के प्रति चिंतित रहते हैं, जबकि समतावादी इससे आगे की सोचते हैं। अमीरों से गरीबों को संसाधनों का हस्तांतरण भारी विषमता को दूर कर सकता है, लेकिन समाज को समतावादी नहीं बना सकता। इसके बावजूद अमीर गरीबों के मुकाबले संसाधनों से भरपूर रहेंगे और समाज असमान बना रहेगा। समतावादी गहरी समानता के प्रति चिंतित रहते हैं। हरेक का समाज के संयुक्त संसाधनों पर समान दावा होना चाहिए। अगर समाज असमान रूप से संगठित होगा, तो इस अधिकार को वैकल्पिक तरीकों से उपलब्ध कराना होगा। इनमें भूमि सुधार, आय की योजनाएं, संपत्तियों की बराबरी और संयुक्त कार्रवाई से संसाधनों का प्रावधान करना शामिल है। मानवतावादी समतावादियों की तरह संसाधनों के समान वितरण के प्रति चिंतित नहीं रहते। उनका मानना है कि किसी को भी अपने हिस्से से अधिक अथवा कम संसाधनों पर कब्जा नहीं करना चाहिए। यही बात समतावादियों को मानवतावादियों से अलग करती है।

यहां पर यह भी महत्वपूर्ण है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के संस्थापकों के पास आरक्षण के समर्थन में दमदार दलीलें थीं। समाजशास्त्रियों को हमें यह बताना होगा कि क्या अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) में किसी ने शुद्धता अथवा प्रदूषण के नाम पर भेदभाव का सामना किया, अगर ऐसा है, तो उन्हें आरक्षण का लाभ मिलना चाहिए। लेकिन जिन जातियों ने आर्थिक विपन्नता का सामना किया, उन्हें अन्य उपायों से लाभ मिलना चाहिए, जो समतावाद से संबंधित है। इसे इस तरह से भी समझा जा सकता है कि आरक्षण उन लोगों के लिए था, जिन्हें दोहरी वंचना का सामना करना पड़ा। उनके साथ जाति व वर्ग की वजह से ऐसा हुआ। शिक्षा व व्यवसाय से दलितों को दूर रखने का मतलब उन्हें आय और आत्मसम्मान से दूर किया गया। आरक्षण इसे ही दूर करने के लिए था। यद्यपि, आरक्षण पर ताजा बहस में इसे गरीबी दूर करने के तौर पर दिखाया जा रहा है और यहीं पर हम गलत हैं। इसके अलावा हम संरक्षणवादी भेदभाव और सकारात्मक कार्रवाई या एफर्मेटिव एक्शन को लेकर भ्रमित हो जाते हैं। अमेरिका में सकारात्मक कार्रवाई न तो कोटे पर न ही योग्यता को घटाने पर आधारित है। अगर सब कुछ समान है तो महिलाओं और एफ्रो-अमेरिकी नागरिकों को प्राथमिकता देना ही वहां एफर्मेटिव एक्शन है। भारत में कोटा और कम योग्यता के मिश्रण से संरक्षणवादी भेदभाव बनता है और यहीं इस पर धब्बा लगता है। हमें अवधारणा और व्यवहार को लेकर भ्रमित नहीं होना चाहिए। आरक्षण विविधता को सम्मान देने के लिए नहीं है। यह एक अन्य विचार है जिसे आरक्षण समर्थकों ने अमेरिका और कनाडा से झटका है। इन दोनों ही देशों में आप्रवासी समाज है और उन्होंने हाल ही में महसूस किया है कि वहां के मूल लोगों को पहचान देने की जरूरत है।

आरक्षण महत्वपूर्ण है, लेकिन इसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए। असमानता को दूर करने के लिए समतावाद है। आरक्षण को समतावाद का एक हिस्सा होना चाहिए, लेकिन वह इसका स्थान लेने लगा है। जहां भूमि सुधार के मुद्दे को इतिहास के कूड़ेदान में डाल दिया गया है, आरक्षण को सीमा से अधिक फैला दिया गया है। यह उन राजनेताओं के लिए आसान विकल्प है, जो समाज में गहरा परिवर्तन लाने के पक्ष में नहीं हैं। दुर्भाग्य से आरक्षण ने उन लोगों की राजनीतिक कल्पनाशीलता को भी सीमित कर दिया है, जिन्होंने सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ी।

आज गलत कारणों से संरक्षणात्मक भेदभाव की नीतियों का समर्थन किया जा रहा है। यदि ऐसा मानवतावादी नजरिये से हो रहा है, तो सर्वोत्तम है, लेकिन यदि ऐसा वोट बैंक के लिए किया जा रहा है, तो यह निकृष्टतम है। दूसरी बात यह है कि संरक्षणात्मक भेदभाव के लिए राजनीतिक समर्थन बहुत ही कमजोर हो गया है, जिससे आक्रामकता बढ़ी है। इसने जातीय भेदभाव की समस्या को कम करने के बजाय बढ़ा ही दिया है।

(इकोनामिक एंड पोलिटिकल वीकली से साभार)

अभिजात व्यवस्था में आरक्षण

राजेंद्र शर्मा

आरक्षण विवाद के रूप में इतिहास बाकायदा खुद को दोहरा रहा है। लेकिन यह मामला मंडल -दो के रूप में, करीब सोलह साल पहले आए मंडल-एक के कमोबेश दोहराए जाने का ही नहीं है। मार्क्स के बहु उद्धृत कथन के अनुरूप इतना ही महत्वपूर्ण यह भी है कि अगर पहली बार उसका रूप त्रासदी का था, तो दूसरी बार उसका रूप बाकायदा प्रहसन का है। शायद जाने-अनजाने विडंबना के जरिये इसके प्रहसन होने को रेखांकित करने के लिए ही उच्च शिक्षा संस्थाओं में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण के विरोध की मुहिम यूथ फार इक्वेलिटी यानी समता के पक्ष में युवा के बैनर तले चलाई गई। फिर भी, अचरज की बात नहीं है कि आरक्षण के नाम से भड़कने वाले इन युवाओं को, जिनमें मेडिकल के छात्र और प्रशिक्षु आदि ही सबसे आगे हैं, समता शब्द के अपने इस प्रयोग की विडंबना का जरा सा खटका तक नहीं हुआ है। यह खुले बाजार की दिग्विजय के जमाने का सुविधासीन युवा है, जो समता या न्याय का एक ही अर्थ जानता है-उसके लिए कमाई की खुली छूट। जाहिर है, उसके लिए ऐसी समता किसी काम की नहीं है जिसकी नजर उनके नहीं, किसी और के लिए बराबरी लाने पर हो।

समता का झंडा लेकर आरक्षण के विरोध की इस मुहिम में मेडिकल छात्रों और डाक्टरों के ही सबसे आगे रहने के भी कुछ महत्वपूर्ण संकेत हैं। बेशक, एक संकेत तो यही है कि बाजारवाद की विजय के इस दौर में सेवा जैसी धारणाओं को इस पेश से भी करीब पूरी तरह से खदेड़ा जा चुका है। हां, अंग्रेजी की सर्विसेज की धारणा की यहां जरूर रसाई है, जहां डाक्टर स्वास्थ्य सेवा का आपूर्तिकर्ता है, जिसका हित अपने काम का ज्यादा से ज्यादा मूल्य लगवाने में है। जाहिर है कि ऐसे ढांचे में अपेक्षाकृत कठिन प्रतियोगिता और पढ़ाई के भारी बोझ से होकर गुजरे युवाओं से यह उम्मीद करना ही निरर्थक है कि उन्हें इसका जरा-सा भी अहसास होगा कि बहुत से युवा ऐसे भी हैं जो उनके जैसी सुविधाजनक स्थिति में नहीं हैं।

इसलिए हो सकता है कि वे जिस मौके को अपना जन्मसिद्ध अधिकार कह रहे हैं, वास्तव में जाने-अनजाने में उन्होंने किसी और से चुराया हो। आखिर इस सच्चाई की चोरी के सिवा और क्या व्याख्या हो सकती है कि आरक्षण समेत तमाम सकारात्मक कदमों के बावजूद हमारे देश में आज भी उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की कतारों में सवर्णों का हिस्सा आबादी में उनके अनुपात से कम से कम तीन गुना ज्यादा है। याद रहे कि यह स्थिति आम स्नातक के स्तर पर है। जाहिर है कि डाक्टरों, इंजीनियरिंग, प्रबंधन आदि अति उच्च प्रशिक्षण के क्षेत्रों में सवर्णों का अनुपात इससे भी कई गुना ज्यादा है।

हद तो यह है कि अपने योग्यता सिद्ध अधिकार का दावा करने वाले डाक्टरी के इन छात्रों और नए-नए डाक्टरों में भी लगातार बढ़ता बहुमत, वास्तव में पैसे की योग्यता के बल पर ही आगे बढ़ने वालों का है। एक गणना के अनुसार, आज देश भर में एमबीबीएस की कुल 26,189 सीटें हैं और इनमें से सिर्फ 12,928 सीटें सरकारी मेडिकल कालेजों में हैं। दूसरे शब्दों में आधे से ज्यादा डाक्टर ऐसी संस्थाओं से पढ़ कर निकल रहे हैं, जहां घोषित-अघोषित फीस मिलकर तेरह से तीस लाख रुपये तक बैठती है। योग्यता की इस कसौटी के सामने प्रतिभा की योग्यता बिल्कुल असहाय है।

साधारण मध्यवर्गीय परिवारों के बच्चों का भी प्रवेश यहां वर्जित है, फिर जनसाधारण के बच्चों के प्रवेश का तो सवाल ही कहां उठता है। शायद यह कहना गलत नहीं होगा कि यह शिक्षा देश की आबादी के सबसे ऊपर के मुश्किल से दस फीसदी हिस्से के लिए ही आरक्षित है। इसमें इतना और जोड़ लेना चाहिए कि व्यावसायिक शिक्षा के कमाऊ क्षेत्र में निजी कारोबार को जिस तरह हर स्तर पर बढ़ावा दिया जा रहा है, उससे दस फीसदी संपन्नों के लिए आरक्षित इस शिक्षा का हिस्सा बराबर और तेजी से बढ़ता ही जा रहा है।

अचरज की बात नहीं है कि मेडिकल, इंजीनियरिंग और मैनेजमेंट जैसे सबसे कमाऊ समझे जाने वाले क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के इस बढ़ते आरक्षण से गुणवत्ता के खतरे में पड़ने या उसमें गिरावट होने की बात किसी इंडियन मेडिकल काउंसिल या सैम पित्रोदा या किसी बकुल ढोलकिया ने कभी नहीं कही। निजी व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं के बड़े हिस्सों में पंद्रह फीसदी सीटें अनिवासी भारतीयों यानी एनआरआई के लिए आरक्षित किए जाने और व्यवहार में ये सभी सीटें सीधे-सीधे बेचे जाने में भी कम से कम उन लोगों में से किसी को कोई बुराई दिखाई नहीं दी है, जो पिछड़ों के लिए इससे थोड़े से ही ज्यादा आरक्षण में भारत के आर्थिक सर्वनाश की आहटें सुन और सुना रहे हैं।

अर्जुन सिंह को दूसरा वीपी सिंह बनाने की दोनों ओर से हो रही तमाम कोशिशों के बावजूद, सच्चाई यही है कि अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का मौजूदा प्रस्ताव तिरानबेवें संविधान संशोधन से निकला है। इस संविधान संशोधन के बाद सरकारी उच्च शिक्षा संस्थाओं में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था लागू करने की जिम्मेदारी से सरकार किसी भी तरह बच ही नहीं सकती थी। आखिर, अपने द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं में पिछड़ों के लिए आरक्षण की व्यवस्था किए बिना सरकार किस तरह से निजी उच्च शिक्षा संस्थाओं से इसका प्रावधान करने की उम्मीद कर सकती थी जबकि यह संविधान संशोधन निजी संस्थाओं में आरक्षण के प्रावधान की रक्षा करने के लिए ही लाया गया था।

बेशक, उच्च शिक्षा के मामले में मौजूद असह्य रूप से भारी असमानताओं को देखते हुए इसे एक मामूली सी शुरुआत ही कहा जाएगा। इस शुरुआत का वास्तविक असर इसलिए और भी सीमित होगा क्योंकि अब तक का अनुभव यही बताता है कि आरक्षण का प्रावधान करना और उसका पालन कराना, दो बहुत ही भिन्न चीजें हैं। यह अकारण नहीं है कि साठ साल से जारी आरक्षण व्यवस्था के बावजूद अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षित करीब साढ़े बाईस फीसदी सीटों में से सोलह फीसदी सीटें ही भरी जा सकी हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ही ताजा रिपोर्ट के अनुसार, देश के सात आईआईटी संस्थानों में पंद्रह फीसदी और आईआईएम संस्थानों में 14.12 फीसदी सीटें ही आरक्षण के जरिये भरी जा सकी हैं।

इन संस्थाओं से पढ़ाई पूरी करके निकलने

वालों में अनुसूचित जाति-जनजाति के छात्रों का हिस्सा और भी कम है। जाहिर है, अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण के पालन का रिकार्ड इससे बहुत भिन्न होने वाला नहीं है। वास्तव में नेशनल स्कूल आफ एजुकेशन प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन का तो स्पष्ट रूप से कहना है कि अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सत्ताइस फीसदी आरक्षण अगर लागू होता है, तब भी इसमें से पंद्रह फीसदी से ज्यादा सीटें नहीं भरी जा सकेंगी। साफ है कि आरक्षण की व्यवस्था भर करना काफी नहीं है। संबंधित तबकों को इस आरक्षण का लाभ उठाने में समर्थ बनाना भी जरूरी है।

जब सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया गया था, उसके विरोध में यह तर्क दिया जा रहा था कि पहले संबंधित तबकों को शिक्षा में बढ़ावा देकर नौकरियों के योग्य तो बनाइए। अब उच्च शिक्षा में आरक्षण का प्रावधान किया जा रहा है तो दलील दी जा रही है कि उच्च शिक्षा के स्तर पर नहीं, पहले प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर उनकी जड़ें मजबूत करने पर ध्यान दिया जाए। यह दूसरी बात है कि इस तरह तर्क की करवटें बदलते हुए भूल से भी कोई यह नहीं कहता कि दोहरी शिक्षा व्यवस्था को बंद किया जाए और सभी के लिए एक समान शिक्षा प्रणाली के यूरोपीय माडल को अपनाया जाए। उल्टे यहां तो योजना आयोग से लेकर ज्ञान आयोग तक सभी इसी की पैरवी करने में लगे हुए हैं कि जरूरी समझा जाए, तो वंचितों के प्रतिभाशाली बच्चों के लिए भी चाहे निजी स्कूल शुरू कर दिए जाएं, लेकिन दोहरी शिक्षा व्यवस्था पर कोई आंच न आने पाए, बल्कि उसे तो ज्यादा से ज्यादा मजबूत ही किया जाए। आखिर मौजूदा नीति निजाम से शिक्षा का ज्यादा से ज्यादा निजीकरण करने के सिवा और किसी दिशा में बढ़ने की उम्मीद भी कैसे की जा सकती है?

इसीलिए व्यवहार में संपन्नों के लिए आरक्षण में ही सबसे तेजी से बढ़ोतरी होने की सच्चाई को दबाने-छिपाने की ही कोशिश की जा रही है। वास्तव में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए प्रस्तावित आरक्षण समेत वंचितों के लिए कुल आरक्षण पर भी संपन्नों का यह आरक्षण भारी पड़ता है। महाराष्ट्र के आंकड़े हमारे पास हैं जिनसे इस आरक्षण की तुलनात्मक स्थिति का कुछ अंदाजा लग सकता है। याद रहे, यह ऐसा राज्य है जहां एक ओर अगर निजी व्यावसायिक कालेजों का कारोबार खूब फल-फूल रहा है तो दूसरी ओर पिछड़ों के लिए पहले से ही आरक्षण लागू रहा है। इस पृष्ठभूमि में सरकार ने सहायता प्राप्त और गैर सहायता प्राप्त, सभी व्यावसायिक कालेजों में सरकारी कोटे में से आधी सीटों का आरक्षण बनाए रखने का फैसला दुहराया है।

इसका अर्थ यह है कि एमबीबीएस, डेंटल आदि से लेकर आयुर्वेदिक, होम्योपैथी और यूनानी पद्धति तक, चिकित्सा शिक्षा की सभी शाखाओं में राज्य में जो कुल 9,160 सीटें हैं, उनमें से सरकारी कोटे की 4,580 सीटों में से आधी यानी 2,290 सीटें अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित होंगी, जबकि इतनी ही सीटें कथित खुली प्रतियोगिता से भरी जाएंगी। इस तरह पिछड़ों के लिए आरक्षण के बाद भी कुल सीटों में से पचीस फीसदी पर ही सामाजिक रूप से वंचितों को आरक्षण

अब उच्च शिक्षा में आरक्षण का प्रावधान किया जा रहा है तो दलील दी जा रही है कि उच्च शिक्षा के स्तर पर नहीं, पहले प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर उनकी जड़ें मजबूत करने पर ध्यान दिया जाए। यह दूसरी बात है कि इस तरह तर्क की करवटें बदलते हुए भूल से भी कोई यह नहीं कहता कि दोहरी शिक्षा व्यवस्था को बंद किया जाए और सभी के लिए एक समान शिक्षा प्रणाली के यूरोपीय माडल को अपनाया जाए।

दिया जा रहा होगा, जबकि मैनेजमेंट कोटा के नाम पर पूरी पचास फीसदी सीटें संपन्नों के लिए आरक्षित होंगी। यही नहीं, पूरी पंद्रह फीसदी सीटें तो एनआरआई कोटा के नाम पर सीधे-सीधे सबसे ज्यादा बोली लगाने वालों को दी जा रही होंगी।

इंजीनियरिंग, फार्मेसी, आर्कीटेक्टर, मैनेजमेंट आदि के अन्य तकनीकी कोर्सों के मामले में स्थिति इस अर्थ में इससे थोड़ी सी बेहतर है कि इन संस्थानों की सत्तर फीसदी सीटें सरकारी कोटे में आती हैं, जबकि मैनेजमेंट द्वारा नियंत्रित सीटों का हिस्सा तीस फीसदी ही है। बहरहाल, अगर इन संस्थानों की कुल 53,064 सीटों में से, सरकारी कोटे की 37,144 सीटों से से आधी यानी 18,572 सीटें सामाजिक आरक्षण से भरी जाने वाली हैं, तो मैनेजमेंट द्वारा नियंत्रित 15,920 सीटों में से आधी यानी 7,960 सीटें एनआरआई के नाम पर सबसे ज्यादा दाम लगाने वालों के लिए बाकायदा सुरक्षित कर दी गई हैं।

जाहिर है कि इतनी ही संख्या अन्य संपन्नों के लिए सुरक्षित सीटों की भी है। यहां तक कि मास्टर आफ बिजनेस मैनेजमेंट की कुल 7,174 सीटों में से भी, अगर पैंतीस फीसदी आरक्षण के लिए उपलब्ध होंगी तो इतनी ही सीटें खुली प्रतियोगिता के लिए और पंद्रह फीसदी और सीटें अखिल भारतीय प्रतियोगिता के लिए उपलब्ध होंगी। दूसरी ओर, पूरी पंद्रह फीसदी सीटें एनआरआई कोटे के लिए सुरक्षित होंगी। विडंबना यह है कि मंडल एक के बाद गुजरे सोलह वर्षों में संपन्नों का आरक्षण ही सबसे तेजी से बढ़ा है। इसके बावजूद योग्यता की तोतारटंत को उसी तरह दोहराया जा रहा है, जैसे ये सभी सच्चाइयां किसी और दुनिया की हों। अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सीमित आरक्षण का ताजा प्रस्ताव भी प्रहसन के अपने हिस्से के तत्वों से मुक्त नहीं है। प्रहसन के सोने में सुहागा यह कि ताजा आरक्षण विरोधी मोर्चे में मेडिकल छात्रों के बाद सबसे आगे हैं खुलेपन की आर्थिक नीतियों के अंधसमर्थक, जिनसे निगम क्षेत्र की बड़ी हस्तियों से लेकर सैम पित्रोदा जैसे बाजारवाद के पैरोकार तक शामिल हैं।

बेशक, उनकी चिंता निजी उद्यमों में रोजगार में आरक्षण की बढ़ती मांग का रास्ता रोकने की भी है। जिस तरह कथित आर्थिक सुधार के हिस्से के तौर पर सरकारी नौकरियों का रास्ता रोके जाने से, आरक्षण की पहले की व्यवस्था का क्षरण हुआ है और व्यावसायिक शिक्षा के नए कमाऊ क्षेत्र में आरक्षण जरूरी हो गया है, उसी प्रकार इन्हीं नीतियों के तहत सार्वजनिक क्षेत्र का दायरा समेटे जाने से निजी क्षेत्र की नौकरियों में आरक्षण जरूरी हो गया है। कथित आर्थिक सुधार की मार वंचित तबकों पर खासतौर पर ज्यादा पड़ रही है। इस अतिरिक्त हमले से बचाने के लिए भी आरक्षण समेत वंचितों की सहायता के प्रावधानों का विस्तार जरूरी है। वरना कथित आर्थिक सुधारों को सामाजिक विस्फोट का पलीता बनने से नहीं रोका जा सकेगा।

(जनसत्ता से साभार)

लेख

आरक्षण और दक्षिण भारत के राज्य

अन्य पिछड़ी जातियों के लिए उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण का विवादित विधेयक आया तो स्वाभाविक रूप से विवाद पैदा हो गया। इस संबंध में कई तरह के तर्क दिए जाते हैं। सबसे पहले इसके बारे में कहा जाता है कि आरक्षण योग्यता और ज्ञान को नजरंदाज करता है। इससे दूसरे समुदाय के लोगों को नुकसान पहुंचता है। खासकर उच्च वर्ग के आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को आरक्षण का खामियाजा भुगतना पड़ा है।

इसके साथ ही यह भी कहा जाता है कि आरक्षण अन्य पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के भी कमजोर तबकों को लाभ नहीं पहुंचाता है क्योंकि इन वर्गों के अमीर लोगों के बच्चे ही इसका लाभ उठा लेते हैं। कुल मिला कर भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) या भारतीय प्रबंधन संस्थान (आईआईएम) में अन्य पिछड़ी जातियों को आरक्षण देने से सामाजिक अराजकता और विध्वंस की स्थिति पैदा होगी।

यह हैरत में डालने वाली बात है कि इस तरह के तर्क उन क्षेत्रों में काफी खुल कर दिए जा रहे हैं, जहां शिक्षण संस्थानों में आरक्षण को कोई वास्तविक या ठोस बढ़ावा कभी नहीं मिला। इनमें उत्तरी भारत के अधिकांश प्रदेश हैं। इसके विपरीत दक्षिण के चार राज्यों और महाराष्ट्र तथा गुजरात, जहां विभिन्न स्तरों पर आरक्षण की व्यवस्था है, में इसका विरोध बहुत ही कम या नगण्य है। इन राज्यों के लोगों तथा यहां तक कि एकेडमिक क्षेत्रों में भी लोग आरक्षण का समर्थन करते नजर आते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन राज्यों में शिक्षा के क्षेत्र में आरक्षण व्यवस्था इतनी सुंदरता से पिरोई गई है कि इसके खिलाफ प्रतिक्रिया सामान्य तौर पर काफी संतुलित मिलती है। हालांकि यह संतुलन पैदा होने में इन राज्यों में भी कई वर्ष लगे। अब इन राज्यों के भी सामाजिक कार्यकर्ता और अकादमिक क्षेत्र के एक बड़े वर्ग ने आरक्षण के विरोध के तर्कों को नकार दिया है।

बताया जाता है कि दक्षिण भारत में समाज के कमजोर वर्गों को विभिन्न स्तरों पर आरक्षण देने की बात एक शताब्दी पुरानी है। इसकी जड़ एक सदी पहले ही गहरी हो चुकी थी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही इस क्षेत्र में कई ऐसे कदम उठाए गए ताकि कमजोर तबके के लोगों को ऊपर लाया जा सके। इस दौरान कई तरह के समाज सुधार आंदोलन चलाए गए तथा जातिगत भेदभाव को खत्म करने के प्रयास हुए।

आरक्षण के पक्ष में सबसे पहला विचार तमिलनाडु में आगे बढ़ा। यही कारण है कि अन्य पिछड़ी जातियों तथा समाज के कमजोर वर्गों को आगे लाने के उद्देश्य से ही

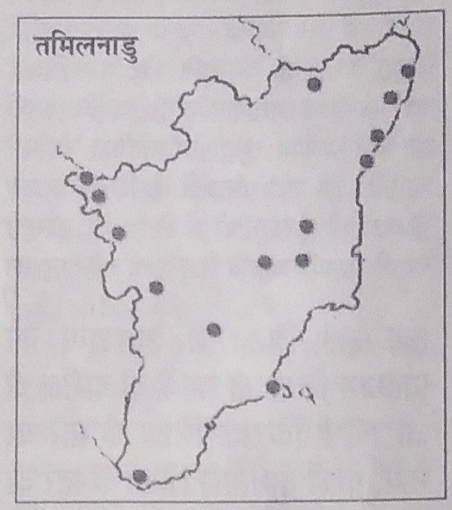

शक्तिशाली द्रविड़ आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इसके चलते मद्रास प्रेसीडेंसी में शिक्षण संस्थानों और सरकारी सेवाओं में आरक्षण 1831 में लागू किया गया। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने समाज के विभिन्न वर्गों से मिली याचिकाओं के आधार पर इसे लागू किया। अगले कुछ दशकों तक आरक्षण के प्रावधानों की लगातार व्याख्या की गई तथा इसमें समय-समय पर सुधार लाया गया। यह प्रक्रिया स्वतंत्रता के बाद भी जारी रही। इस दौरान प्रदेश में जब भी द्रविड़ पार्टियों, द्रविड़ मुनेत्र कणगम (द्रमुक) या आल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कणगम (एआईडीएमके) की सरकार रही, आरक्षण व्यवस्था को अधिक तर्कसंगत बनाया गया, इसका वर्गीकरण किया गया तथा इसे आर्थिक और अत्यंत पिछड़ी जातियों के लिए लाभप्रद बनाने की कोशिश की गई। इन्हीं सारे उपायों के कारण तमिलनाडु के शिक्षण संस्थानों में 69 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था है।

इसके बाद आरक्षण को राष्ट्रीय स्तर पर मंडल आयोग की सिफारिशों के अनुरूप किए जाने से तमिलनाडु की व्यवस्था को और बल मिला। इसके बाद सुप्रीम कोर्ट ने शिक्षण संस्थानों में आरक्षण को 50 फीसदी तक सीमित करने का निर्देश दिया। अदालत का यह आदेश आरक्षण विरोधियों द्वारा तमिलनाडु में आरक्षण के प्रतिशत में कमी लाने के लिए किए गए प्रयासों के कारण आया। इसका वहां की सरकार ने विरोध किया और प्रदेश में 69 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था को संविधान की नौवीं अनुसूची में शामिल करा दिया ताकि न्यायपालिका उस पर उंगली नहीं उठा सके। यही कारण है कि तमिलनाडु में अब आरक्षण विरोध कहीं नहीं दिखता।

कर्नाटक और केरल में तमिलनाडु का प्रभाव गहरा पड़ा है। इन दोनों राज्यों में भी अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में लागू करने की पहल की गई। हालांकि इसमें समय के अनुरूप कुछ बदलाव किए गए। त्रावणकोर, कोच्चि और मैसूर की रियासत ने सर्वप्रथम शिक्षण संस्थानों में आरक्षण की व्यवस्था लागू की और इसे उन जगहों पर व्यापक समर्थन भी मिला। इस परंपरा के कारण ही बाद में मंडल आयोग की सिफारिशों को भी यहां स्वीकार करने में लोगों को कोई परेशानी नहीं हुई। लोगों ने माना कि सामाजिक न्याय के लिए आरक्षण जरूरी है।

आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात में हालांकि आरक्षण लागू करने की प्रक्रिया काफी देर से शुरू हुई। आंध्र प्रदेश में इसे 1970 के दशक में शुरू किया गया जबकि गुजरात और महाराष्ट्र में 1980 और 1990 के दशक में इसकी शुरुआत हुई। वर्तमान में कर्नाटक में उच्च शिक्षण संस्थानों में 50 फीसदी आरक्षण की व्यवस्था है। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि आरक्षण के कारण ही 1992 से 2002 के बीच अन्य पिछड़ी जातियों के 25 हजार छात्रों का प्रोफेशनल कालेजों में नामांकन हो सका। केरल में अन्य पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था है जबकि आंध्र प्रदेश में 49.5 प्रतिशत है।

-विपिन कुमार उपाध्याय

लघु कथाएं

बात

उस दिन सुबह रमेश मिले। कहने लगे, एक बात तुम्हें बतलाना है लेकिन अभी उसे अपने पास तक ही रखना, मेरे सिवा किसी को मालूम नहीं है। देखो, हमारे साथ जो वर्मा जी काम करते हैं, वे बंबई चले गए हैं। उन्हें बंबई में ही अच्छी जगह मिल गई है। अब वे लौटेंगे नहीं। तुम उनकी जगह के लिए दरख्वास्त दे दो। अभी किसी से कहना मत। दोपहर को दिनेश मिले। कहने लगे, एक बात सुनी। तुम तक ही सीमित रहे। अभी मुझे ही मालूम हुई है। वर्मा ने बंबई में नौकरी कर ली है। तुम उस जगह के लिए फौरन अर्जी दे दो। शाम को कमलेश मिले, कहने लगे, एक बात कॉफिडेंस में करनी है। देखो, कहीं बाहर न जाए। मुझे भी मालूम हुई है। वे वर्मा जी हैं न, हमारे साथ-वे बंबई में ही अब नौकरी करेंगे। तुम फौरन उस जगह के लिए कोशिश करो।

दूसरे दिन सुबह रामलाल मिले। बोले, भाई, वर्मा जी वाली जगह के लिए क्यों नहीं कोशिश करते? मैंने पूछा, तुमसे किसने कहा कि जगह खाली है? रामलाल बोले, दिनेश ने। दोपहर को श्यामलाल मिले। कहने लगे, वर्मा तो अब आएंगे नहीं। तुम जाओ वहां। मैंने पूछा, तुमसे किने कहा? वे बोले, रमेश ने। शाम को मोहनलाल मिले। पूछा, तुमने वर्मा वाली जगह के लिए दरख्वास्त दी कि नहीं? तुम भी बड़े लापरवाह हो। मैंने पूछा, तुमने कैसे जाना कि वर्मा नहीं आएंगे? वे बोले, कमलेश ने बतलाया। दो दिन बाद वर्मा जी आ गए। एकदम मेरे घर आए। आते ही बरस पड़े, अरे भाई, अगर ऐसा ही था तो मुझे कह देते, मैं इस्तीफा दे देता। इस तरह क्यों भगाना चाहते हो? यह भी क्या बात है? जरा पीठ फिरी कि आपने छुरी भोंक दी। मैंने कहा, आखिर हो क्या गया? वर्मा जी बोले, मेरी जगह के लिए आपकी अर्जी मैंने देखी है आज दफ्तर में। आखिर तुमसे कहा किसने कि मैं नौकरी छोड़ रहा हूं?

इसी समय रमेश, दिनेश व कमलेश घूमते-घामते मेरे घर पहुंचे। वर्मा जी के कुशल समाचार आदि पूछने लगे। बात का तार टूट गया। थोड़ी देर बाद फिर उन्होंने पूछा, हां, तुमने यह नहीं बतलाया कि तुमने कैसे जाना कि मैं नौकरी छोड़ रहा हूं? मैंने कहा दिया, दिनेश, रमेश तथा कमलेश बैठे हैं इन्होंने ही कहा था। वर्मा जी ने कहा, क्यों यारों, ऐसी अफवाह तुमने क्यों उड़ा दी? और वे तीनों एक स्वर से बोले, हम क्यों उड़ाएंगे? सारे शहर में तो बात फैल रही है।

-हरिशंकर परसाई

कील

सड़क के बीच एक कील पड़ी है। तेजी के साथ एक युवक साइकल पर आया। उसकी निगाह कील पर पड़ी। झटपट हैंडल घुमाकर वह अपनी मुस्तैदी पर मुस्कराया कि उसने साइकल का टायर पंचर होने से बचा लिया है।

घिसे हुए जूते में कोई चीज चुभी है। बूढ़े ने गर्दन झुकाकर नीचे की ओर देखा। एक कील है। मुंह बिचकाकर वह आगे निकल गया। फिर आगे पीछे दौड़ते हुए दो लड़के आए। आगे वाले लड़के ने उछल कर अपने पांव को छलनी होने से बचा लिया। दूसरे ने पूछा, उछले क्यों? पहले वाले ने कील की ओर इशारा कर दिया। साथ ही जख्मी होने से बच जाने की खुशी में किलकारी भर दी। दूसरा भी उसकी होशियारी पर खुश हो गया। कील अब भी सड़क पर पड़ी है।

-पृथ्वीराज अरोड़ा

बंद दरवाजा

सूरज क्षितिज की गोद में निकला, बच्चा पालने से वही स्निग्धता, वही लाली, वही खुमार, वही रोशनी। मैं बरामदे में बैठा था। बच्चे ने दरवाजे से झांका। मैंने मुस्कराकर पुकारा। व मेरी गोद में आकर बैठ गया। उसकी शरारतें शुरू हो गईं। कभी कलम पर हाथ बढ़ाया, कभी कागज पर। मैंने गोद से उतार दिया। वह मेज का पाया पकड़े खड़ा रहा। घर में न गया, दरवाजा खुला हुआ था।

एक चिड़िया फुदकती हुई आई और सामने के सहन में बैठ गई। बच्चे के लिए मनोरंजन का यह नया सामान था। वह उसकी तरफ लपका। चिड़िया जरा भी न डरी। बच्चे ने समझा अब वह परदार खिलौना हाथ आ गया। बैठकर दोनों हाथों से चिड़िया को बुलाने लगा। चिड़िया उड़ गई निराश बच्चा रोने लगा। मगर अंदर के दरवाजे की तरफ ताका भी नहीं। दरवाजा खुला हुआ था।

गरम हलवे की भीनी पुकार आई। बच्चे का चेहरा चाव से खिल उठा। खोंचे वाला सामने से गुजरा। बच्चे ने मेरी तरफ याचना की आंखों से देखा। ज्यों-ज्यों खोंचे वाला दूर होता गया। याचना की आँखें रोष में परिवर्तित होती गईं। यहां तक कि जब मोड़ आ गया और खोंचे वाला आंख से ओझल हो गया तो रोष ने पुरजोर फरियाद की सूरत अख्तियार की। मैं बाजार की चीजें बच्चों को नहीं खाने देता। बच्चे की फरियाद ने मुझ पर कोई असर न किया। मैं आगे की बात सोचकर और भी तन गया। कह नहीं सकता -बच्चे ने अपनी मां की अदालत में अपील करने की जरूरत समझी या नहीं। आमतौर पर बच्चे ऐसे हालतों में मां से अपील करते हैं। शायद उसने कुछ देर के लिए अपील मुल्तवी कर दी हो। उसने दरवाजे की तरफ रुख न किया। दरवाजा खुला हुआ था।

मैंने आंसू पोछने के खयाल से अपनी फाउंटेनपेन इसके हाथ में रख दिया। बच्चे को जैसे सारे जमाने की दौलत मिल गई। उसकी सारी इंद्रियां इस नई समस्या को हल करने में लग गई। एकाएक दरवाजा हवा से खुद ब खुद बंद हो गया। पट की आवाज बच्चे के कानों में आई। उसने दरवाजे की तरफ देखा। उसकी यह व्यस्तता तत्क्षण लुप्त हो गई। उसने फाउंटेनपेन को फेंक दिया और रोता हुआ दरवाजे की तरफ चला क्योंकि दरवाजा बंद हो गया था।

-प्रेमचंद

पीढ़ी दर पीढ़ी

उसके पिता ने उसे पढ़ाया नहीं था

उसने सोचा, मैं अपने बच्चों को जरूर पढ़ाऊंगा। अपने बच्चे तो उसने स्कूल में प्रवेश दिलाया। एक दिन बच्चे ने किताबों की मांग की। दूसरे दिन बच्चे ने स्कूल ड्रेस की मांग की। तीसरे दिन बच्चे ने फीस की मांग की। ये फसल कटाई के दिन थे। पिता ने कहा, बेटा फसल मंडी में बिकेगी, तभी मजूरी मिल पाएगी, किताबें और ड्रेस तभी आएंगे। फीस तभी जा पाएगी।

बेटा पिता का हाथ बटाने लगा। एक दिन पाठ याद न होने पर बच्चे को सजा मिली। दूसरे दिन-स्कूल ड्रेस न होने पर बच्चे को घर भेज दिया गया। तीसरे दिन फीस न भरने पर स्कूल से उसका नाम काट दिया गया। वह बच्चा फिर कभी स्कूल नहीं जा पाया। जब वह बड़ा हुआ तो उसने सोचा, मैं अपने बच्चों को जरूर पढ़ाऊंगा.....।

-अशोक भाटिया

KALRAV

सदस्यता फार्म

सदस्यता शुल्क

एक प्रति	10 रुपये
वार्षिक	100 रुपये
पांच वर्ष के लिए	400 रुपये
आजीवन	5000 रुपये
विदेशों में वार्षिक	100 डालर

हम कलरव के वार्षिक/आजीवन सदस्य बनना चाहते हैं। हम वार्षिक/आजीवन शुल्क .... रुपये मनीआर्डर/डीडी/चेक से भेज रहे हैं।

हमारी प्रति निम्न पते पर भेजें–

नाम ....

पता ....

.... पिन कोड ....

दूरभाष ....

ईमेल ....

इसे आप तक पहुंचाने का खर्च कलरव उठाएगा। हम मनीआर्डर/डीडी/चेक कलरव के नाम से भेजें।

प्रसार व्यवस्थापक

सहयोग

(पंजीकृत स्वयं सेवी संगठन)

पंजीयन क्रमांक–1800/90–91

पंजीकृत कार्यालय : 109, सेक्टर–6, वैशाली, जनपद : गाजियाबाद

पिछले एक दशक से अधिक समय से स्वास्थ्य, शिक्षा, खेल, ग्रामीण विकास पर्यावरण जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सतत् कार्यरत

- उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के बैरिया तहसील पर बड़े व्यायाम शाला का सफल संचालन
- मध्य प्रदेश के सिवनी जनपद में महिला साक्षरता के लिए सचल स्कूल का संचालन
- स्वास्थ्य की देखभाल के लिए समय–समय पर स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन
- पर्यावरण जागरूकता के लिए प्रतिवर्ष राष्ट्रीय स्तर की गोष्ठियों का आयोजन

सितंबर माह की महत्वपूर्ण घटनाएं

राष्ट्रीय

● 1 सितम्बर- नौ बच्चों की हत्यारी बहना रेणुका बाई और सीमा को उच्चतम न्यायालय ने फांसी देने पर मुहर लगाई।

● 6 सितम्बर- प्रधानमंत्री ने परमाणु ठिकानों पर फिदायीन हमलों पर चिन्ता जताई।

● 7 सितम्बर- देश भर में वन्देमातरम् गाने की धूम।

● 8 सितम्बर- धनबाद के भाटडीह कोयला खदान में 62 मजदूर मौत के मुँह में समा गये।

● 9 सितम्बर- महाराष्ट्र के मालेगाँव मस्जिद पर आतंकी हमला, दो सौ मरे।

● 16 सितम्बर- प्रधानमंत्री ने विमान में मनायी शादी की वर्षगांठ।

● 22 सितम्बर- उत्तर प्रदेश में निकाय चुनाव की अधिसूचना जारी।

● 23 सितम्बर- टीआरएस ने यूपीए सरकार से समर्थन वापस लिया।

● 26 सितम्बर- संसद हमला कांड के दोषी अफजल गुरु को कोर्ट ने 20 अक्टूबर को फांसी पर लटकाने के लिए डेथ वारंट जारी।

● 28 सितम्बर- आरक्षण पर मोइली समिति ने क्रीमीलेयर से पल्ला झाड़ा।

● 30 सितम्बर- राजधानी दिल्ली में डेंगू का कहर, दर्जन भर मरे, कई सैकड़ा अस्पतालों में।

पुरस्कार

● 4 सितम्बर- इन्फोसिस के संस्थापक एन आर नारायन रेड्डी की पत्नी सुधा नारायन मूर्ति को सर्वश्रेष्ठ

● सामाजिक कार्यकर्त्ता का पुरस्कार दिया गया।

● 25 सितम्बर-आमिर खान की रंग दे बसंती ऑस्कर के लिए नामित।

● 2 अक्टूबर -नोबल विजेता आर्क बिशप डेसमंड टू टू को वर्ष 2005 के गांधी शांति पुरस्कार के लिए चुना गया।

● 3अक्टूबर- पेप्सिको की मुख्य कार्यकारी अधिकारी भारत भूमि की इंदिरा नूयी को विश्व की सबसे शक्तिशाली महिला का खिताब दिया गया।

● 15 सितम्बर- वर्ष 2004 का भारत-भारती पुरस्कार वरिष्ठ साहित्यकार नामवर सिंह को दिया गया।

नियुक्ति

● 1 सितम्बर- शिवशंकर मेनन भारत के विदेश सचिव नियुक्त। इनकी नियुक्ति इसलिए भी चर्चा में रही कि इन्होंने वरिष्ठता क्रम के 14 अफसरों को लांघकर यह पद पाया।

● 2 सितम्बर- राज्य सभा सांसद शोभना भारतिया एबीसी की अध्यक्ष बनीं।

● न्यायमूर्ति बी एन श्रीकृष्ण छठवें वेतन आयोग के अध्यक्ष नियुक्त।

● पश्चिमी बेड़े के प्रमुख रहे वाइस एडमिरल सुरेश मेहता नये नौसेना प्रमुख नियुक्त।

● 3 सितम्बर- प्रत्यूष सिन्हा केन्द्रीय सतर्कता आयोग के नये आयुक्त नियुक्त किये गये।

● 12 सितम्बर- शरद पवार की बेटी सुप्रिया सुले राज्यसभा के लिए निर्विरोध चुनी गईं।

● 14 सितम्बर- के बिनायगम झारखण्ड के मुख्य न्यायाधीश नियुक्त।

● 18 सितम्बर- झारखण्ड में मधु कोड़ा ने नये मुख्यमंत्री की शपथ ली।

● 28 सितम्बर- श्रीलंका में भारत की उच्चायुक्त निरुपमा राय को चीन में देश का नया राजदूत नियुक्त किया गया।

● 30 सितम्बर- शाहिद मलिक भारत में पाक के नये उच्चायुक्त।

खोज

● 15 सितम्बर- इरान ने लाइलाज बीमारी एड्स की दवा खोजने का दावा किया।

● 17 सितम्बर- पांडिचेरी का नाम पुडुचेरी किये जाने पर सरकार की मंजूरी।

● 20 सितम्बर- केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान लखनऊ ने कैंसर की दवा खोजने का दावा किया।

अंतर्राष्ट्रीय

● 2 सितम्बर- ईरान में विमान में आग से नब्बे लोगों की मृत्यु।

● गुयाना में मुक्त बाजार के हिमायती भरत जगदेव दोबारा राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

● 3 सितम्बर- न्यू स्टेट्समैन के अध्ययन में मुशर्रफ की गिनती टाप टेन तानाशाहों में।

● 7 सितम्बर- लेफ्टिनेंट रूपमंगत कटवाल को नेपाल का सैन्य प्रमुख बनाया गया।

● 16 सितम्बर- ईसाई धर्मगुरु पोप बेनेडिक्ट-16 ने इस्लाम समाज पर दिये गये बयान के लिए माफी मांगी।

● 27 सितम्बर- शिंजो बने जापान के 90वें प्रधानमंत्री।

● 30 सितम्बर- पूर्व सैन्य प्रमुख जनरल सुरामुद छूलानेंट थाईलैंड के नये प्रधानमंत्री नियुक्त।

● 2 अक्टूबर- चेक गणराज्य की 18 वर्षीय सुन्दरी तताना कुचरोवा को मिस वर्ल्ड चुना गया।

निधन

● 20 सितम्बर- दिल्ली के पूर्व उपराज्यपाल रहे पी के दवे का निधन।

● 25 सितम्बर- गुजरे जमाने की अभिनेत्री पद्मिनी का दिल का दौरा पड़ने से निधन।

● 29 सितम्बर- जयपुर की विमला देवी मोक्ष के लिए संथारा कर मृत्यु को गले लगाया।